सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर स्वामीश्री चन्द्रमौलेश्वरी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन मटाई– 283202 (आगरा) उ.प्र.

प्रकाशन तिथि : 01.09.2018 मूल्य – एक प्रति : 20/–, द्विवार्षिक : 360/–

वर्ष : 51 : अंक : 8 नवम्बर 2018

अमृतकण

यावत्स्थो ह्यय देहो यावन्मृत्युश्च दूरत:।
तावदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यति।।

(चाणक्य)

अर्थात् जब तक शरीर निरोग व स्वस्थ है और मृत्यु दूर है तब तक अपने आत्म-कल्याण का उपाय कर लेना चाहिए। क्योंकि मृत्यु हो जाने पर कोई कुछ नहीं कर सकता।

• • •

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जित:।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।

(श्री मद्भगवद् गीता 6/6)

अर्थात् जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्मा का तो वह स्वयं ही मित्र है जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिए वह स्वयं ही शत्रु जैसा व्यवहार करता है।

• • •

शतं वोऽम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुह:।
अधाशत क्रत्वो यूयमिमं मेऽअगदकृत।।

(यजुर्वेद)

मनुष्यों को चाहिए कि वे उचित पथ्य, आहार और नियमों का विधिवत्पालन कर शरीर को रोग रहित रखें अर्थात् स्वास्थ्य की रक्षा करें, क्योंकि स्वस्थ रहे बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

• • •

नैक: सुखी न सर्वत्र विश्वन्तो न च शंकित:।
नोद्यमे विरमेत्क्वापि हेत्ताबीर्ष्यंत्फले न तु।।

(भावप्रकाश 5/258)

अकेले सुख का भोग न करके, दूसरे को सुख भोग कराते हुए स्वयं सुख भोगना चाहिए। सबके ऊपर विश्वास या संदेह न करके सोच समझकर उचित व्यवहार करना चाहिए। उद्योग करना न छोड़ें और दूसरे की उन्नति और सम्पन्नता से ईर्ष्या न करें।

•••

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 51
अंक 8

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विपदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

नवम्बर
2018

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वधियो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं
स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु।।

– श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/12

अर्थात्

जो रुद्र इन्द्रादि देवताओं को उत्पन्न करने वाला और बढ़ाने वाला है तथा जो सबका अधिपति और महान ज्ञानी (सर्वज्ञ) है। जिसने सबसे पहले उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भ को देखा था, वह परमदेव हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करे।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

□□□ □□□

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	12
3.	श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा– डॉ. विजय सिंह	14
4.	योग चर्चा – जगदीश राए बंसल	17
5.	हंस योग और नाद – श्री पं. मनोहरलाल शर्मा	21
6.	महात्मा अपना परिचय दे – हेमराज चोपड़ा	34
7.	'योग' शक्तिमान बनाने की विद्या है – दिनेश चन्द्र शर्मा	37
8.	योग प्रचार कार्यक्रम	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन	: रु.1000.00

विशेष लेख

श्रद्धा एवं सत्संग का वास्तविक स्वरूप

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अभी–अभी मैं महात्मा ज्ञानी राम से 'गपोचन' की कथा सुन रहा था। जब कथा सुनाई जा रही थी, तो उस समय मेरे मन में भगवान् के शब्द घूम रहे थे–**श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्ः स एव सः** अर्थात् भगवान् का रूप श्रद्धामय है, उसे मनुष्य जिस नाम और रूप में भजता है, ईश्वर उसको उसी नाम रूप में मिल जाते हैं।

'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना:' के अनुसार हर प्राणी की मति में भेद रहता है। गुणों का तारतम्य हर जगह चलता रहता है। इसलिये मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा चिन्तन करता है, उसे वैसी ही प्राप्ति होती है। गीता में भगवान् ने ज्ञान प्राप्ति के तीन साधन बताये हैं।

'श्रद्धावान्लभते ज्ञानम् तत्परः संयतेन्द्रियः।'

पहला साधन–श्रद्धावान होना। श्रद्धालु व्यक्ति ज्ञान को पा जाता है, दूसरा तत्परता अर्थात् जो साधना में तत्पर रहता है, लगा रहा है। और तीसरा साधन है–**'संयतेन्द्रिय होना'**। ये तीन उपाय हैं–तीन साधन हैं जिनके द्वारा मनुष्य यथार्थता को पा जाया करता है। मैं इस व्याख्यान में तुम्हें कुछ और भी बातें समझा देना चाहता हूँ। मैंने तुम्हें यह बताया था–**भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्** अर्थात् जो विदेह देवता हैं और जो प्रकृतिलीन योगी हैं, उनको जन्म से ही समाधि लगती है। दूसरे योगी होते हैं–उपाय प्रत्यय वाले उनके लिये सिद्धान्त है–

'श्रद्धावीर्यस्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्वकमितरेषाम्।'

अर्थात् जो योगाभ्यासी हैं–उपाय प्रत्यय वाले योगी हैं, उनके लिये श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा ये क्रम हैं। इसलिये इस साधना मार्ग में श्रद्धा का, स्थान पहला है। अस्तु।

श्री मद्भागवत् के एकादश स्कन्ध में भगवान ने एक सिद्धान्त की बात कही है–

'न रोधयति माँ योगो न साँख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्ति न दक्षिणा।।
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमाः यमाः।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्।।'

अर्थात् मुझे योग रिझा नहीं सकता, मैं न तो साँख्य सिद्धान्त से अथवा धर्म पालन से ही अथवा स्वाध्याय, तप, त्याग, इष्टापूर्ति एवं दक्षिणा से ही वश में होता हूँ। मुझे व्रत, यज्ञ वेदाध्ययन, तीर्थ तथा यम–नियम भी रिझा नहीं सकते। किन्तु सर्वसंगों का हरण करने वाला सत्संग जिस प्रकार मुझे रिझा लेता है, उस प्रकार से दूसरे कोई उपाय मुझे रिझा नहीं सकते। अब तुम कहोगे कि भगवान ने यहाँ पर कह दिया कि योग भी मुझे रिझा नहीं सकता उधर गीता में भगवान स्वयं योग की ही जगह–जगह प्रशंसा करते हैं।

तस्माद्योगी भवार्जुन! अर्जुन तुम योगी बनो–**'तस्माद् सर्वेषु कालेषु योग युक्तो भवार्जुन्'।** 'अर्जुन तुम हर समय योग युक्त रहो।' **योगी परमस्थानं उपेति चाद्यम्** अध्ययन से, यज्ञ से, तप से, दान से, जो पुण्य फल प्राप्त होता है, उन सब को त्याग कर भी, योगी परम पुरुष को पा जाता है। इस प्रकार से गीता में भगवान योग का ही गुणगान करते हैं। और अर्जुन को योगी बनने की आज्ञा देते हैं। इस बात को तुम नहीं समझोगे। देखो! योग के दो रूपक है एक है सिद्धयोग। दूसरा है साधन योग। सिद्धयोग में गुरुदेव शिष्य को अपनी शरण में लेकर शक्तिपात से उसकी शक्ति जागृत कर देते हैं और उसे तत्काल ही ऊँची भूमिकायें प्रदान कर देते हैं। साधन योग में साधक साधना के बल से, धीरे–धीरे आगे बढ़ता है।

नेति, धौति आदि षट कर्म–प्राणायाम तथा तप, स्वाध्याय ये सब साधन योग हैं। यहाँ पर भगवान् **'न रोधयति माँ योगो'** में साधन योग की ओर इशारा करके कहते हैं कि इन साधनों से मैं वश में नहीं होता हूँ। वैसे साधन योग में भी यदि कोई स्वस्तिकासन, पद्मासन में बैठने का अभ्यासी बन जाये और **'समकाय शिरोग्रीवम्'** के तरीके से बैठने की आदत डाल ले, तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि उसकी सुषुम्ना चल पड़ेगी और यदि वह भजनानन्दी है तो उसका ध्यान लगने लग जायेगा। सुषुम्ना के अन्दर भी तीन नाड़ियाँ हैं। बाईं ओर वज्रा और दाईं ओर चित्रिणी है। बीच में ब्रह्मनाड़ी है। यदि प्राण वज्रा को स्पर्श करे, तो साधक जड़वत् बैठा रहता है और यदि चित्रणी को छूने लगे तो उसे दर्शन आदि होते हैं। ब्रह्म नाड़ी में गति होने पर वह शुद्ध प्रकाश की ओर बढ़ जाता है। निर्गुण चैतन्य की ओर, ब्रह्म ज्ञान की ओर। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि कोई

सीधा बैठने का ही अभ्यास कर ले तो वह योगी बन जाता है। **प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य** प्राणायाम का अभ्यास करता है तो उसका भी चित्त निर्मल हो जाता है। जिस प्रकार से अग्नि में डाल देने पर धातुओं के मल जल जाते हैं, उसी प्रकार से प्राणायाम से इन्द्रियों के मल जल जाते हैं। प्राणायाम का फल है—**'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्'** अर्थात् प्रकाश का जो आवरण है वह प्राणायाम से नष्ट हो जाता है। साधनयोग में तो साधक को अभ्यास करते–करते अपने परिणाम तक पहुँचना पड़ता है। इसलिये **'न रोधयति मां योगः'** इस पद में भगवान ने साधन योग की ओर संकेत करके, कह दिया है कि मैं योग क्रियाओं से वश में नहीं होता हूँ। यम नियम पालन एवं स्वाध्याय तपादि भी मुझे वैसे नहीं रिझा पाते, जैसे सब कुसंगों का हरण करने वाला सत्संग मुझे रिझा लेता है। तुम लोग सत्संग का अर्थ क्या समझते हो? सत्संग का अर्थ यह नहीं है कि थोड़ी देर तुम लोग मिल लिये और भजन–कीर्तन आदि बोल लिये। सत्संग का सही अर्थ यह नहीं। **'सताम् महताम् सिद्धानाम् संगः सत्संगः'**। अर्थात् सिद्धों का, महापुरुषों का जो संग है, वह सत्संग कहलाता है। सिद्ध संगति से सब कुछ मिल जाता है। यदि सिद्ध आँख से देख भी लेता है तो शक्ति पात हो जाता है। किसी के प्रति मन में विचार बन जाये, इसका ऐसा हो जाये, तो शक्तिपात हो जाता है। और यदि वाणी से कह दे—**'तस्माद् योगी भव।'** तू योगी हो जा। तो वह योगी बन जाता है। तो इस प्रकार से सिद्ध संगति का फल तो बहुत ही उत्कृष्ट होता है। इसलिये भगवान कहते हैं कि इस प्रकार का सत्संग यदि किसी को प्राप्त हो जाये तो फिर वह व्यक्ति मुझे प्रसन्न कर लेता है। अन्य–अन्य योग के साधन जैसे–तप तीर्थ आदि से मैं जल्दी प्राप्त नहीं होता। अभी तुम सब गपोचन की कथा सुन रहे थे। कथा को सुनते हुये मुझे भी श्रद्धा के रूप का ख्याल आ रहा था। परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जिसकी जैसी श्रद्धा बन जाती है परमात्मा उसके लिये वैसे ही बन जाता है। मुझे अपने एक बच्चे की याद आई है, वह मैं तुम्हारे सामने कह दूँ। पाँच दस वर्ष पहले पटना में बी एन सिन्हा की कोठी पर एक वकील मेरे पास आया करता था। बाद में वह महात्मा बन गया और अयोध्या में जाकर किसी वैरागी महात्मा से दीक्षा ले ली। वह भक्ति मार्ग में भगवान राम का भक्त बन गया। उसका एक बच्चा था, उसे वह यहाँ इलाहाबाद में ही हमारे पास छोड़ गया कि इसे आप अपने साथ रख लें। हमने उसे रख लिया। घर का नाम तो उसका कुछ और था किन्तु हमने उसका नाम योगानन्द रख लिया। उसमें भी भगवान राम की शक्ति के संस्कार बने हुये थे। हमने उससे पूछा—''राम जी कौन से लोक में रहते हैं? वह कहने लगा—''गुरु जी! राम जी तो सबसे ऊपर रहते हैं, उनसे बड़ा कोई नहीं है।' हमने कहा—'विष्णु जी से बड़े?'

वह कहने लगा—'विष्णु जी से तो बहुत बड़े!' हमने कहा—'कृष्ण जी से भी बड़े?' कहने लगा—'वह कृष्ण जी से बड़े हैं।' मैंने कहा—'शंकर जी से''। 'गुरुजी! शंकर जी से तो वे बहुत बड़े है।' राम जी सबसे बड़े हैं और वह सबसे ऊपर रहते हैं। वहाँ ब्रह्मा विष्णु आदि तो पहुँच भी नहीं सकते। मैं उसकी बात सुनता रहा। वह मुझे प्यारा लगता रहा। मैंने कहा—'ठीक है भई! रामजी सबसे बड़े हैं।'' यह उस की श्रद्धा की बात थी। एक बार हम अपने ऋषिकेश आश्रम में थे। वृन्दावन का हमारा एक बच्चा मृदुल गोस्वामी है। वह बिहारी जी के मन्दिर का पुजारी भी है, वह हमारे पास आ गया। बातचीत के प्रसंग में मेरे मुख से निकल गया—**''एते चांशकला: पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्''** अर्थात् ये जितने अवतार हुये हैं, वे सब कलाधारी मानव थे। किन्तु, कृष्ण स्वयं भगवान हैं। वह कहने लगा—गुरुजी! हाँ, हाँ, आप ने बिल्कुल सच्ची बात कही है। कृष्ण जी तो भगवान हैं ही। फिर मुझ से कहने लगा गुरु जी! एक बात और भी मैं आप को बता दूं। मैंने कहा—**''अच्छा! बता, क्या बात है?''** वह कहने लगा, जो कृष्ण जी कुरुक्षेत्र गये थे न, उन से द्वारिका-धीश बड़े हैं। और द्वारिकाधीश में जो कृष्ण जी थे उससे मथुरा वाले कृष्ण जी बड़े थे और मथुरा वाले कृष्ण जी से वृन्दावन वाले बड़े थे और वृन्दावन वालों से भी बिहारी जी बड़े हैं। मैंने पूछा—बिहारी जी से आगे और कोई बड़ा? वह कहने लगा—'नहीं! बिहारी जी से कोई बड़ा नहीं है। वही सबसे बड़े हैं।' वह बिहारी जी का पुजारी है और भक्त है। इसलिये उसकी दृष्टि में बिहारी जी ही सबसे बड़े थे। मुझे उसकी ये बातें बड़ी प्यारी लगीं। मैंने सोचा—कितनी निष्ठा है। इसकी बिहारी जी में।

एक बार हम काठमाण्डू गये। वहाँ पर थोड़ी दूरी पर गुह्येश्वरी मन्दिर है। वहाँ से श्री प्रभु जी हिमालय गये थे। श्री प्रभु जी वहाँ बैठे हुये थे महाप्रभु जी आये और उनको अपने साथ आकाश मार्ग से अपने स्थान पर ले गये थे। हम गुह्येश्वरी मन्दिर देखने गये। मन्दिर के साथ में छोटी सी पहाड़ी है। उस समय घूमने फिरने की आदत थी ही। अब तो यह शरीर गवाही नहीं देता, नहीं तो यहाँ इलाहाबाद में भी नित्य सात-आठ मील दूर जाकर शौचादि से निवृत होते थे। उस मन्दिर के साथ पहाड़ी की ओर हम आगे निकल गये। वहाँ जाकर घाटी में मुझे कुछ शोर सा सुनाई दिया, मैं उस घाटी के अन्दर चला गया। वहाँ जाकर मैंने देखा कुछ पहाड़ी लोग नाच रहे हैं उनमें कुछ स्त्रियाँ भी हैं। वे नाचते हुये कह रहे थे—**''चिन्चिडिंग चिन्चडिंग।''** मैंने पूछा—''भाई! यह चिन्चडिंग क्या है?'' भाषा मेरी कोई नहीं समझता था। फिर एक आदमी मिला वह थोड़ा-थोड़ा हिन्दी बोल लेता था। वह मेरे पास आकर कहने लगा—''चिन्चिडिंग हमारा देवता है।'' मैंने कहा—''यह

कौन सा देवता है? मैंने इस देवता का नाम आज तक कभी सुना नहीं है। वह कहने लगा चिन्चिडिंग तो दुनियाँ में सबसे बड़ा देवता है। उनसे बड़ा और कोई नहीं।'' मैंने पूछा—'' शंकर जी, कृष्ण जी से भी बड़े।'' उसने कहा—''चिन्चिडिंग तो सबसे बड़ा देवता है, बाकी सब देवता उनसे छोटे हैं। इसलिए हम चिन्चिडिंग को जप रहे हैं।''

तब भी मेरे मन में आया—''**श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रदः स एव सः।**'' अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है उनको जो जिस रूप में चाहेगा वे वैसे ही बन जायेंगे। योग दर्शन में भगवान् पतञ्जलि जो योगाभ्यासी हैं उनके लिये उपाय प्रत्यय अर्थात् साधन योग–क्रिया योग का उपदेश किया है। साधन योग भी कोई छोटी चीज नहीं है। यदि कोई ब्रह्मचर्य पूर्वक उसकी साधना करे तो सभी कुछ पा जाता है। लेकिन मनमाने ढंग से करने पर कुछ लाभ नहीं होता। अभी कुछ दिन पहले चण्डीगढ में किसी व्यक्ति ने योग दर्शन के '**भुवन ज्ञानम् सूर्ये संयमात्**' के अनुसार सूर्य में त्राटक करना आरम्भ कर दिया। संयम का अर्थ वह जानता नहीं था। उसने नंगी आँखों से सूर्य पर त्राटक लगाया। परिणाम यह हुआ कि तीन दिन के अन्दर उसकी आँखों की रोशनी जाती रही। ऐसे लोगों के लिए तो उचित यह है ''**देखा देखी साधे योग। छीजे काया बाढ़े रोग।**''

गुरु उपदिष्ट होकर साधना करने से ही सफलता मिलती है। यदि गुरुपदिष्ट होकर ठीक प्रकार से साधना करें तो योग की एक क्रिया ही पराकाष्ठा तक पहुँचा देती है। त्राटक क्रिया में काला बिन्दु बना कर उस पर त्राटक का अभ्यास किया जाता है। वह काला बिन्दु त्राटक करते–करते सफेद बन जाता है। अर्थात् प्रकाशमय हो जाता है। उस प्रकाश वाली आँखों के भीतर बाहर जहाँ भी लगाओगे वहाँ का सब दीखने लग जायेगा। उस प्रकाशयुक्त आँखों को भ्रूमध्य में स्थिर किया जाये तो फिर—''**मर्धज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्**'' के अनुसार मूर्धा ज्योति में उस प्रकाश को फेंक देने पर सिद्धों के दर्शन होने लगते हैं। सिद्धों का दर्शन अमोघ होता है। सिद्ध प्रसन्न होकर शक्तिपात कर देते हैं और इससे समाधि लग जाती है। लोग साधना करते नहीं है, बस चाहते हैं यूँ ही काम हो जाये। मेरे पास दिन भर में ऐसे कितने ही आदमी आते हैं। एक आदमी ने आज दिन में आकर मुझ से कहा—कि शक्तिपात कर दो। शक्पित कोई मजाक की चीज थोड़ी है। यूँ थोड़े ही शक्तिपात हो जाता है। तुम पहले मेहनत तो करो अपने को उसका अधिकारी तो बनाओ, तो फिर शक्तिपात करने वाले परमात्मा की शक्ति अपने आप मिल जायेगी। साधक को अपने आप को पहले उत्तम अधिकारी बना लेना चाहिए! मृदु, मध्य एवं अधिमात्र तीन प्रकार के अधिकारी होते हैं। जो सतोगुणी होते हैं, वे अधिमात्र श्रेणी के उत्तम अधिकारी होते हैं। रजोगुण वाला

मध्यम तथा तमोगुण वाला मृदु अधिकारी अर्थात् निकृष्ट अधिकारी होता है। उत्तम अधिकारी बन जाने पर भी **''स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारसेवितो दृढ़ भूमिः''** पतञ्जलि जी के इस सूत्र को हमेशा याद रखना चाहिए। जो जल्द बाजी में रहते हैं वह धोखा खा जाते हैं। इसलिये दीर्घकाल सेवित–लम्बे समय तक चार छः वर्ष तक किया जाये तत्पश्चात् नैरन्तर्य–निरन्तर अर्थात् लगातार! यह नहीं कि एक दिन कर लिया दो दिन छोड़ दिया। फिर एक दो दिन किया, फिर छोड़ दिया। ऐसा नहीं होना चाहिए। तीसरी बात है **''सत्कारासेवित''** सत्कार पूर्वक अभ्यास में लगा रहे। मन अत्यन्त चंचल है क्षण–क्षण में बदलता है। कभी सोचता है यह मन्त्र जपे, फिर कभी सोचता है, इस मन्त्र का जाप करे, कभी सोचता है ऐसे ध्यान करें। इस प्रकार से दुविधा में पड़ा रहता है। इस दुविधा को दूर करने के लिए ही तो गुरुदेव की शरण लेना जरूरी हो जाता है। गुरुदेव की शरण मिल जाने के बाद जो भी रास्ता विधि वे बतायें उस पर ही चलना चाहिए। उनके दिये हुये मन्त्र को ही सर्वश्रेष्ठ समझना चाहिए। उसी का जाप करना चाहिए। जिस इष्ट देव का ध्यान बताया गया हो उसी का ध्यान करना चाहिए। अपने गुरुदेव में ही शक्ति व निष्ठा रखनी चाहिए।

''मन्नाथो त्रिजगन्नाथः मद्गुरुस्त्रिजगद्गुरुः'' के अनुसार मेरे नाथ ही तीन लोक के स्वामी हैं। मेरे गुरुदेव ही जगद् गुरु–सबके गुरु हैं। ऐसी भावनाओं से गुरुनिष्ठ रहे। मेरा साधना मार्ग ही सर्वोत्तम है। मेरा मन्त्र सबसे बड़ा मन्त्र है। इस प्रकार से सत्कार पूर्वक अपनी साधना में लगे रहने पर वह साधना दृढ़ भूमि वाली बन जाती है। हमारा जो मन्त्र है, जो मैं अपने बच्चों को देता हूँ, उसके विषय में अनुभवी सन्तों और योगियों का लेख है कि इसका साढ़े तीन वर्ष तक जो लगातार जाप कर लेता है, वह सिद्ध हो जाता है। किन्तु इसके साथ–साथ कुछ और भी बातें हैं। साधक का पवित्र आचार–विचार का जीवन हो। इस प्रकार साधना करने से मनुष्य के अन्दर शक्ति का उत्थान होता चला जाता है। किन्तु हमारी इन्द्रियाँ शक्ति को क्षीण कर देती हैं जो भोग–विलासों में पड़ा रहता है, उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है बहुत से लोग हमसे प्रश्न किया करते हैं कि शक्तिपात करने पर शक्ति कायम रहती है या चली जाती है? लोगों का ऐसा अनुभव है कि शक्तिपात होने पर शक्ति कुछ दिन चलती है और फिर क्षीण हो जाती है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। जो शक्ति जिसको दी जाती है, वह कायम रहती है बशर्ते वह संयम से रहे–ब्रह्मचर्य से रहे। जिन साधकों ने पुराने समय में हमारे कन्ट्रोल में रह कर साधना की है, उनको पता है कि किस प्रकार से बहुत जल्दी ही उत्थान होता है। इस प्रकार से जो

साधना करते हैं वे योगी और सिद्ध तक हो जाते हैं। हमारे कितने ही बच्चे जंगलों में कन्दराओं में बैठे हुये हैं। ऐसे ही साधकों में एक बच्चा काश्मीर में गुलमर्ग–खिलमर्ग की तरफ हमारे बनारस के बच्चे प्रमोद और उसके साथी को मिला था। उसने जय गुरुदेव जी की करते हुये कहा था कि मैं भी गुरु देव का ही बच्चा हूँ और यहाँ पहाड़ पर साधना करता हूँ।

मैंने तुम्हें क्रिया योग के विषय में संकेत किया था। क्रिया योग ही साधन योग है। साधन योग में साधक धीरे–धीरे **''श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञा''** की सोपान पर चढ़ते हुये लक्ष्य की ओर जाता है। इसी के साथ में क्रिया योग का अभ्यास किया जाता है ताकि साधक समाधि तक पहुँच जाये। क्रियायोग में तीन बातें होती हैं।

'तपस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः' तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान को 'क्रिया योग' कहते हैं। उनमें सबसे पहला स्थान है तप का। सर्दी–गर्मी भूख–प्यास आदि द्वन्द्वों को सहन करके शरीर को साधना के अनुकूल बनाना तप कहलाता है।

मैंने तुम्हारे सामने कई बार अपने वृन्दावन के बचपन के साथ अगड़धत्ता की बात सुनाई है। वह उल्टी रीति का साधु था। सर्दियों में तो वह लंगोटी के अतिरिक्त कुछ नहीं पहनता था। किन्तु गर्मियों में जेठ के महीने में तीन कम्बल ओढ़ लेता था इनमें से एक तो सिर पर बाँध सा लेता था और दो वैसे ही ओढ़ लेता था। लोग उनसे कहते–''महाराज! बहुत गर्मी है आप इन कम्बलों को उतार दें!'' वह पहले तो कुछ बोलता ही नहीं था यदि बोलता तो कहता–''यदि तुम्हारा बाप ओढ़ता हो तो मैं उतार देता हूँ।'' इस प्रकार से जवाब देता था। मैं उसकी इस बात को समझ गया था कि सर्दी गर्मी को सहन करने की दृष्टि से ही वह ऐसा किया करता था। प्राणायाम भी एक बहुत बड़ा तप है। हमने अपने बच्चे रघुनन्दन प्रसाद को घोर तप कराया था। उसने तीन महीने तक एक समय अल्पाहार करके तप किया। फिर अगले तीन महीने बेल के पत्ते खाकर तप करता रहा। फिर इसके बाद तीन महीने लस्सी (छाछ) पीकर तप करता रहा, साथ योग ध्यान का क्रम तो चलता ही था। उस प्रकार साधना करने से उसको **''ऋतम्भरा प्रज्ञा''** की प्राप्ति हो गई थी। सबसे बड़ा तप है इन्द्रिय निग्रह। मन तो क्षण–क्षण गिराने को तैयार रहता है इस पर कन्ट्रोल करना द्वन्द्व सहन है और यही तप है। यदि एक मनुष्य अपने आप को भोगों से निकाल लेता है तो वह परम तपस्वी है। तप का फल योग दर्शन में बताया है–**'कायेन्द्रियसिद्धिर शुद्धिक्षयात्तपसः'** अर्थात् तप से अशुद्धि क्षय होने पर कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि मिलती है। कायिक सिद्धि–शरीर का अत्यन्त दृढ़ होना, निरोग एवं कान्तिमान होना है। ऐन्द्रिय

सिद्धि से दूर–दूर की देखना, दूर की सुनना, दूर की गन्ध एवं रस का ग्रहण करना आदि–आदि ताकतें आ जाती हैं। तप की साधना के साथ–साथ स्वाध्याय को बढ़ाये अर्थात् मन्त्र जप में लगे रहना चाहिए। इधर से तप चल रहा है और साथ–साथ जप भी चल रहा है इसका परिणाम होगा–

''स्वाध्यायद्दिष्ट देवता सम्प्रयोगः'' इस प्रकार तपयुक्त स्वाध्याय से इष्ट देव का दर्शन होता है। ऋषि, मुनि एवं सिद्ध लोग उसको दर्शन देते हैं और उसको वरदान आदि मिलता है। इस प्रकार तप–स्वाध्याय करते–करते साधक कुदरती ईश्वर प्रणिधान की ओर निकल जाता है। ईश्वर प्राणिधान का अर्थ है आत्म समर्पण। यूँ तो हर व्यक्ति कह दिया करता है कि ''मैंने तो अपना आपा सौंप दिया है, अब आप जानो।'' वाणी से तो कह दिया। किन्तु वाणी से कह देने पर फिर अपनी इच्छाओं के अनुसार क्यों चलो? जैसा मैं चाहूँ वैसा करो। यदि साधक अपने मन के अनुसार ही काम करता है, तो उसने अपने आप को सौंपा ही नहीं, काम तो अपने मन के अनुसार करता है और सौंपने का नाम लेता है। सौंपने का अर्थ होता है–**''यद् करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।''** जो खाते हो, जो करते हो, जो देते हो, जो हवन करते हो, जो तपस्य करते हो, वह सब इष्ट के लिए होना चाहिए उसकी एक–एक हरकत अपने इष्ट के लिए होती है। इस प्रका से तप होता रहे। स्वाध्याय से सिद्धों का दर्शन एवं आशीर्वाद मिल गया इन दो ताकतों के मिल जाने पर ईश्वर प्रणिधान अर्थात् आत्म निवेदन अपने आप हो जायेगा जिस का फल है–समाधि। **''समाधिसिद्धीरश्वर प्रणिधानात्''** अर्थात् ईश्वर प्राणिधान से समाधि सिद्धि मिलती है यह योग दर्शन का सूत्र है। अस्तु बात श्रद्धा से प्रारम्भ हुई थी। जो योग मार्ग में चलना चाहते हैं उनके लिए श्रद्धा सबसे पहली और जरूरी चीज है।

''श्रद्धा चेतसः सम्प्रसादः''। चित्त की प्रसन्नता का नाम श्रद्धा है श्रद्धा योगी की माँ की तरह रक्षा करती है। जिस प्रकार माँ अपने बच्चे की हर प्रकार से रक्षा करती है, उसी प्रकार से श्रद्धा भी योगी की रक्षा किया करती है। श्रद्धा से क्या मिलता है? इस पर व्यास जी भाष्य में कहते हैं–

'श्रद्दधानस्य विवेकार्थिनो वीर्यमुपजायते' श्रद्धा के आने के बाद साधक के मन में साधना के प्रति उत्साह बढ़ जाता है–दृढ़ता आ जाती है।

'समुपजात वीर्यस्य स्मृतिरुपतिष्ठते' और जब दृढ़ता आ जाती है, तो साधक की स्मृति कायम करती है और स्मृति के उपस्थान से चित्त स्वतः ही समाहित होने लगता है, और इस प्रकार समाहित चित्त से प्रज्ञाविवेक–अर्थात् ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति हो जाती है। फिर हर वस्तु को योगी यथार्थता से जान लेता है। श्रद्धा का इतना बड़ा परिणाम

निकलता है। इसलिये तुम सब श्रद्धायुक्त होकर डटकर साधना में लग जाओ। अरे! मेरे से क्या शक्तिपात लोगे। वे सर्वशक्तिमान प्रभु जी नेपाल में बैठे-बैठे अपने बच्चों पर शक्तिपात करते रहते हैं। उनके स्वरूप के सामने बैठकर ध्यान करने से कुदरती शक्तिपात होता है।

आज एक पुराना सत्संगी मिला था। वह कह रहा था आप के सिद्ध गुफा में बैठने पर मुझ में अपने आप नाद प्रकट हो गया। वह नादानुसंधान का अभ्यासी था। उसे नाद सुनाई दे गया होगा। श्री प्रभु जी गुफा में रहा करते थे। उनके दिव्य परमाणुओं से यह परिपूरित है। इसलिये जो वहाँ जाकर ध्यान में बैठता है, उसका ध्यान अवश्य लगता है। मेरे मन में 'गपोचन' की कथा को सुनकर **'श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः'** ये भगवान के वचन बराबर घूमते रहे। कोई उसे गोपाल कहे, राम कहे, अल्लाताला कहे, चिन्चिडिंग कहे कुछ भी नाम रूप से माने भगवान भक्त की श्रद्धानुसार उसी रूप में प्राप्त होते हैं। श्रद्धा ही मनुष्य को योगी बनाती है और परमात्मा तक पहुँचा देती है। इसलिये तुम सब संयतेन्द्रिय होकर, श्रद्धायुक्त होकर अपने को साधना में लगाओ। यह प्रयाग क्षेत्र अक्षय क्षेत्र है। यहाँ पर किया गया जप तप अनन्त गुणा फल देने वाला होता है। कल्याण धन श्री प्रभु जी के चरणों में समर्पण रखते हुये अपनी साधना को बढ़ाओगे, कल्याण का रास्ता खुलता चला जायेगा।

आश्रम समाचार

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज का साप्ताहिक श्रद्धाञ्जलि कार्यक्रम में 3 दिन का प्रवास रहा 27 सितम्बर को 'स्वच्छ भारत अभियान, समर्थ भारत अभियान की आधारशिला है" इस विषय पर व्याख्यान रहा। इसमें आचार्य जी ने बाहरी स्वच्छता के साथ-साथ मन, बुद्धि आदि की स्वच्छता पर बल दिया। समर्थ भारत बनने के लिये हर व्यक्ति को स्वच्छ छवि व शुद्ध चरित्रवान होना आवश्यक है, इस बात पर जोर दिया। 29 सितम्बर को ब्रह्मलीन राष्ट्रसन्त अवैद्यनाथ जी की चतुर्थ पुण्य तिथि पर उनके पावन कार्यों को याद करते हुये राष्ट्र की उन्नति के उनके अथक प्रयास को याद किया गया। श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम के सभी भक्तों की ओर से आचार्य जी ने अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

सम्पादकीय–

स्वच्छता एक वरदान

–आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

आजकल के समय में स्वच्छता पर काफी बल दिया जा रहा है। महात्मा गाँधी जी भी स्वच्छता के प्रबल पक्षधर रहे हैं। वर्तमान में हमारे देश के प्रधानमन्त्री जी एवं प्रदेश के मुख्यमन्त्री जी इसे सेवा का रूप मानते हैं राष्ट्र के समर्थ बनाने में उसे परम उपयोगी मानते हैं। सेवा निःस्वार्थ भाव से मन से की जाती है। इससे अपने देश की सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा व पहचान होती है।

स्वच्छता–स्वच्छता, गन्दगी रहित, निर्मल स्थिति को कहते हैं। जीवन के हर क्षेत्र में इसकी आवश्यकता होती है। जहाँ गन्दगी होती है वहीं से ही रोग के कीटाणु पनपते है और नाना रोगों के कारण बनते हैं।

इसलिए आवश्यक है कि हम अपने गली, मुहल्ले व घरों को स्वच्छ रखें। स्वच्छ देश ही महान कहलाने योग्य है। अतः स्वच्छता एवं स्वास्थ्य का अमिट सम्बन्ध है। स्वास्थ्य मनुष्य का अमूल्य धन होता है कहा भी गया है Health is Wealth जहाँ हम वातावरण को साफ स्वच्छ रखते हैं वहाँ व्यक्तिगत जीवन में भी अपने शरीर को स्वच्छ रखें। शास्त्रों में इस विषय में आया है।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति विद्या तपोभ्याम भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति। अर्थात् मिट्टी, जल, साबुन आदि से शरीर की शुद्धि करनी चाहिए। सत्य वाणी तथा आचरण से मन शुद्ध होता है। विद्या एवं तप से जीवात्मा की शुद्धि होती है तथा ज्ञान से बुद्धि निर्मल होती है।

बुद्धि को शुद्ध रखने के लिए आहार का भी बहुत महत्त्व है। शास्त्र कहते हैं–

आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ धुवा स्मृति।

अर्थात् आहार शुद्ध व सात्विक हो तो बुद्धि शुद्ध होती है और बुद्धि के शुद्ध होने पर स्मृति अटल रहती है। अतः आहार शुद्धि पर भी ऋषियों ने बहुत बल दिया है। प्याज व लहसुन का सेवन कभी नहीं करना चाहिए। अध्यात्म योग में भी महर्षि पतञ्जलि देव जी ने यम नियमों के अन्तर्गत नियम में सर्वप्रथम शौच का वर्णन किया है। शरीर शुद्धि के अन्तर्गत शौच आदि जाने के पश्चात् मिट्टी आदि से दस बारह बार हाथ धोना चाहिए तथा स्नान करना चाहिए। भारत देश गर्म है वातावरण गर्म रहने के कारण पसीना आदि

के आने से शरीर में बदबू हो जाती है। अत: साबुन, मिट्‌टी आदि से स्नान करना आवश्यक होता है। शुद्ध शरीर में ही शुद्ध मन का वास रहता है। वृत्ति सतोगुणी होती है जिससे मन को प्रसन्नता मिलती है।

गीता में भगवान ने आसुरी एवं दैवी सम्पदा वाले जीवों का वर्णन किया है। आसुरी सम्पदा वाले मनुष्यों के विषयों में वे कहते हैं।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुरा
न शौचं नापि चाचारो न सत्यम् तेषु विद्यते।

अर्थात् आसुरी वृत्ति वाले प्रवृत्ति और निवृत्ति को नहीं जानते। उनमें न शौच का पालन करते हैं। तथा उनका आचरण भी ठीक नहीं होता है और सत्य उनके जीवन में नहीं होता है।

स्वच्छता ही सतोगुण को प्रदान करने वाली होती है। गीता के चौदहवें अध्याय में भगवान सतोगुण के विषय में कहते हैं–

तत्र सत्वं निर्मलत्वात प्रकाशकमनामयम्

अर्थात् सतोगुण की वृद्धि होने पर प्रकाश का उदय होता है तथा व्यक्ति निरोग रहता है। आजकल के पढ़े लिखे व्यक्ति सतोगुण और तमोगुण के Positive energy तथा Negative energy के रूप में जानते हैं।

योग एवं अध्यात्म में भी शुद्धि के बिना मुक्ति की संभावना नहीं है।

पातञ्जल सूत्र है–

''सत्व पुरुषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यम्'' अर्थात् बुद्धि के पूर्ण निर्मल होने पर तथा आत्मा के पूर्ण शुद्ध होने पर ही कैवल्य या मुक्ति लाभ होता है।

इस प्रकार से स्वच्छता की जीवन के हर क्षेत्र में आवश्यकता है। यह किसी देश की सभ्यता एवं संस्कृति को दर्शाती है। विदेशों में सार्वजनिक स्थलों पर गन्दगी फैलाने वालों पर दण्ड का भी विधान है। हमारे देश में भी ऐसे ही दण्ड का विधान होना चाहिए।

हमारे देश के प्रधानमन्त्री जी ने घर–घर शौचालय बनाने का जो संकल्प लिया है वह सराहनीय है। इससे भारत की छवि अच्छी बनेगी। हमारा देश हर क्षेत्र में सशक्त और समर्थ बन सकेगा। दुनिया के विकासशील देशों में भारत अग्रगण्य बनेगा। हमारे देश के नेताओं की भी छवि स्वच्छ व ईमानदारी की होना चाहिए ताकि जनता भी उनके पद चिन्हों पर चलकर देश को आगे ले जाने में उनका पूरा–पूरा सहयोग दे सकें।

स्वच्छता से भारत सशक्त तथा समर्थ बन सकता है। योगी जी एवं मोदी जी ने यह अभियान चलाकर जनता में स्वच्छता के लिए जागृति पैदा की है; इसके लिये यह दोनों महापुरुष धन्यवाद के पात्र हैं।

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

श्रीमद्भागवत पुराण में योग-परिचर्या

डॉ. विजय सिंह

कैसे भगवान बालकृष्ण ने यमुना के विषैले जल को पीकर मर चुके ग्वाल-बालों एवं गउओं को अपने कृपा दृष्टि से जीवन दान दिया था? यह विवरण पिछले लेख में सुधी पाठक पढ़ चुके हैं। अब परात्पर ब्रह्म श्री कृष्ण ने यमुना जी को पूर्णतः शुद्ध करने के विचार से कालिया सर्प को बलात समर्पण कराकर उसे अन्य स्थल में निवास हेतु भेज दिया।

जिस समय बालकृष्ण कालिया दह में कूदे उस समय कालिया नाग विश्राम कर रहा था। उसके विश्राम में खलल पड़ने से वह क्रोधित होकर अपने सैंकड़ों फन को फैलाकर विष उगलता हुआ श्रीकृष्ण के मर्मस्थानों में डँसकर अपने कुण्डल में लपेट कर जकड़ लिया। श्रीकृष्ण नागपास में बँधकर निश्चेष्ट हो गये। यह देख गोप गण माँ यशोदा, नन्द बाबा सभी मूर्छित हो गये। क्यों न हों, सभी के प्राणधन तो श्रीकृष्ण ही थे। यह बँधना तो श्रीकृष्ण की लीला थी। एक मुहूर्त बंधन में रहकर श्रीकृष्ण ने अपना शरीर फुला कर मोटा कर लिया। साँप का शरीर फटने लगा। वह कृष्ण को छोड़ दूर खड़ा फुफकारने लगा। भगवान कृष्ण उसे भाँति-भाँति छकाकर, थकाकर अन्त में उसके मध्य फन पर उछलकर चढ़ गये। श्रीकृष्ण ने उसके फनों पर ताण्डव-नृत्य करना शुरू कर दिया। पदाघात से उसके शिर फट गये और रक्तधार बहने से मृतप्राय हो गया। तब उसकी नाग स्त्रियाँ विविध प्रकार से भगवान की स्तुति करने लगीं और प्रार्थना किया कि पति को प्रभो! जीवन दान दें।

प्रभो! जो आपकी चरणों की धूल की शरण लेते हैं, वे भक्तजन स्वर्ग का राज्य अथवा पृथ्वी राज्य का अधिकार नहीं चाहते। न वे रसातल का राज्य चाहते हैं और न तो ब्रह्मा का पद ही लेना चाहते हैं। उन्हें अणिमादि योग-सिद्धियों की भी चाह नहीं होती। वे जन्म-मृत्यु से छुड़ाने वाले कैवल्य-मोक्ष की भी इच्छा नहीं करते—

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
वाञ्छन्ति यत्पादरज: प्रपन्ना।।37।।

अ. 16 स्क0 10 पूर्वार्ध

जब नाग पत्नियों ने भाँति–भाँति विनयपूर्वक स्तुति की, तब भगवान की दया से नाग की इन्द्रियों में चेतना लौट आयी। दीनता पूर्वक वह भगवान कृष्ण से बोला–आप सर्वज्ञ और सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। आप हमारे स्वभाव और इस माया के भी कारण हैं। अब आप अपनी इच्छा से–जैसा समझें–कृपा करें या दण्ड दें।

तब भगवान के आदेश से अपनी पत्नियों, पुत्रों, बन्धु बान्धवों के साथ रमणक द्वीप, जो समुद्र में सर्पों के रहने का एक स्थान है वहाँ के लिये प्रस्थान किया। भगवान कृष्ण की कृपा से तब से यमुना का जल अमृतमयी हो गया।

अब सत्रहवें अध्याय में, परीक्षित ने पूछा–भगवन कालीय नाग ने रमणक द्वीप को छोड़कर यमुना में क्यों निवास बनाया? भगवान शुकदेव जी ने कहा–राजन! पूर्व काल में सर्पों ने यह करार गरुड़ जी से किया था कि प्रत्येक मास अमुक वृक्ष के नीचे एक सर्प आपको अपना बलि देगा। ब्रह्माजी ने यह नियम बनाया था कि प्रत्येक अमावास्या को प्रत्येक सर्प परिवार बारी–बारी से गरुण जी को एक सर्प की बलि दिया करेगा। कालिया नाग अपने विष और बल के घमण्ड में गरुड़ का तिरस्कार करते हुये उनको अर्पित बलि भाग को स्वय खा लेता। शक्तिशाली गरुड़ जी ने कालिय नाग को मारने हेतु उस पर आक्रमण किये। उनके पंख की चोट से नाग घायल हो गया। वहाँ से भागकर यमुना जी के इस कुण्ड में छिप गया। क्योंकि तपस्वी सौभरि जी के मना करने पर कभी गरुड़ ने क्षुधातर होकर उस कुण्ड से मत्स्य पकड़कर खा लिया था। इससे रुष्ट होकर ऋषि ने गरुड़ को श्राप दिया कि इस कुण्ड से आगे यदि किसी जीव का भक्षण किये तो तत्काल प्राणों से हाथ धो बैठोगे। यह बात केवल कालीय नाग को पता था। अतः वह यहाँ निर्भय होकर रहता था।

भगवान कृष्ण द्वारा कालिया नाग को मर्दित करते हुये यमुना तट पर सभी गोप बाल, गायें, नन्दबाबा, यशोदा जी आदि ने देखा था। वे सभी हर्षित एवं आनन्दित थे। सभी ब्रजवासी और गौयें भूखी–प्यासी एवं थके थे। गर्मी का दिन था। वहीं यमुना के तट पर

सभी सो गये। गर्मी के दिन थे, बन सब सूख गया था। अर्धरात्रि को दावाग्नि भड़क उठी। ब्रजवासियों को चारों ओर से घेर लिया। अग्नि के आँच से तपते हुये ब्रजवासी श्रीकृष्ण के शरणागत हुये। भगवान! अनन्त व परमस्वलंब हैं। वे कृष्ण अपने स्वजनों को व्याकुल देख वे उस भयंकर आग को पी गये–

इत्थं स्वजनवैकल्व्यं, निरीक्ष्य जगदीश्वरः।

तमग्नि मपिब्रत्तिब्रमनन्तो ऽ नन्तशक्ति धृक।।25।।

अ. 17 स्क. 10 पूर्वार्ध

एक बार सब ग्वाल–बाल दो टीम में बँटकर खेल खेलने लगे। एक के मुखिया श्रीकृष्ण दूसरे के बलराम थे। इस खेल में जो जीतता वह हारने वाले के पीठ पर चढ़कर दूर तक जाता। इस प्रकार वे सभी खेलते हुये और गौओं को चराते भण्डीर नामक वट के पास पहुँच गये। प्रलम्बासुर नामक दानव ग्वाल बालक बनकर श्री कृष्ण की टोली में शामिल हो गया। अवसर पाकर हार कर वह बलराम जी को अपनी पीठ पर चढ़ाकर निर्दिष्ट स्थान की ओर तेजी से चला परन्तु वहाँ न रुक कर वह बलराम जी को बहुत आगे एकान्त स्थल पर ले जाकर अपना भयंकर रूप दिखाया। बलराम जी को लेकर वह आकाश में उड़ गया। उसे आकाश में जाते देख पहले तो बलराम जी कुछ घबड़ा से गये। परन्तु अपने स्वरूप का स्मरण होते ही उसके सिरपर एक वज्रवत घूसा मारा। प्रलम्बासुर का सिर चूर–चूर हो गया। उसी समय प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देख कर ग्वाल बालों का चित्त प्रेम से भर उठा। उसके मृत्यु से प्रसन्न हो देवता बलराम जी पर पुष्प वर्षा करते हुये कहने लगे–बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया।

आयु–नाश के छः दोष

अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्याग का अभाव, क्रोध, स्वार्थ, और मित्र–द्रोह यह छः तीखी तलवारें देहधारियों की आयु को काटती हैं। जो संसार में अधिक जीना चाहते हैं उन्हें इन छः दोषों से बचना चाहिए।

–महात्मा विदुर

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

योग वर्षा

जगदीश राए बंसल अधम

139 दीपाली पीतम पुरा नई दिल्ली–34 मो. : 9212434003

श्री प्रयाग राज कुम्भ मेले के चलते अखण्ड मण्डलाकार योग–योगेश्वर सद् गुरु देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज ने जन समुदाय के हितार्थ योग वर्षा करते हुए कहा कि, देखो लल्ला–श्रीमद्भागवत् गीता में अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण जी महाराज ने महात्मा अर्जुन को स्थान–स्थान पर योग का महत्त्व समझाया है और यहाँ तक कहा है कि **तस्माद्योगी भवार्जुन!** अर्थात् हे अर्जुन तुम योगी बनो। क्योंकि योगी का दर्जा तपस्वियों, कर्म कांडियों और ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है .....। इसी प्रकार योग का उदाहरण देते हुए गुरु देव जी ने महाराष्ट्र के चौदह वर्षीय सन्त श्री ज्ञानेश्वर जी महाराज द्वारा चौदह–सौ वर्षीय सन्त श्री चाँगदेव जी महाराज पर योग शक्ति पात करके यथार्त मे योगी राज बनाने की चमत्कारी कथा विस्तार से समझाई। गुरुदेव जी ने आगे बतलाया कि योग अनन्त है जो बड़े भाग्य से मिलता है। योग बल से काक भुशुंडि जी महाराज बहुत पहले ही काक नाड़ी ग्रंथ में कहते हैं कि हे देवी मैं एक महापुरुष के जातक फल की भविष्यवाणी कह रहा हूँ कि योग विद्या के पुनर्रुद्धार हेतु सन् 1888 में गुरुओं की नगरी अमृतसर में पंडित गंडाराम जी के घर माता भागवन्ति की कोख से योगकृषक श्री रामलाल नामक जातक अवतरित होंगे .... इत्यादि। जो अक्षरतः सत्य हुई। इस समय मुझे श्री प्रभू जी की कई बातें याद आ रही हैं।

देखो–श्री प्रभु जी ने अपनी बाल्यावस्था से ही अनेकानेक चमत्कारी कार्य किए हैं और अपनी किशोरावस्था में ही अपने गुरु की लालसा में सारे तीर्थ खोज मारे। एक बार जब आप पूर्व दिशा में चल रहे थे तो कुछ नाग जनों ने देवी को बलि चढ़ाने के लिए आपको पकड़ लिया और मन्दिर में ले गए। मन्दिर की देवी जिसको यह बलि दी जाने वाली थी, आपको देख कर यकायक काँप उठी। देवी जी ने मन ही मन आपको सादर प्रणाम किया और अपनी योग माया से एक लीला रची। तदनुसार स्तन पीड़ा से कराहती

बिलखती एक नारी वहाँ आयी। वह नारी अपनी स्तन पीड़ा से राहत पाने के लिए गुहार लगा रही थी। इस नारी की असहनीय पीड़ा से राहत देने में नाग जनों ने स्वयं को असहाय जान कर चुप्पी साध ली। मगर भक्तवत्सल श्री प्रभु जी ने अपनी उत्कण्ठा से वहीं आस–पास से कुछ औषधियाँ उखाड़ीं और उन औषधियों को रगड़ कर उक्त नारी के स्तन पर लेप कर दिया।

आश्चर्य! महान आश्चर्य! कि औषधियों का लेप लगाते ही उस पीड़ित नारी को उसके अवसाद से तुरन्त आराम आ गया। श्री प्रभू जी की इस चमत्कारी व मनोहारी छवि से प्रभावित उस माया नारी ने उपस्थित नाग जनों से अपनी मृदुभाषी मनुहार लगाई कि इस करुणा सागर महापुरुष की बलि न दी जाए। इस विषय पर नागजनों में वाद–विवाद हो गया। चलचित्तता के कारण आक्रोश इतना उफन पड़ा कि वे लोग दो गुटों में बँट गए। दोनों गुटों में जमकर युद्ध हुआ। येन केन प्रकारेण उस नारी का गुट विजय को प्राप्त हुआ। विजयी गुट ने श्री प्रभूजी से क्षमा याचना की और शर्मीली नजरों से प्रभू जी को अपने चंगुल से मुक्त कर, स्वयं को धन्य समझा।

तत्पश्चात् आपने नेपाल में विचरण करते हुए गुहेश्वरी मन्दिर पहुँच कर पहाड़ी कन्दरा में घोरतम तपस्या प्रारम्भ कर दी। जब आपकी तपस्या अपने पराकाष्ठा पर थी तब एक अर्धरात्रि को एक विचित्र घटना घटी। हुआ यूँ कि वहाँ पर सदाशिव भगवान स्वयं नारायण प्रकट हो गए। और आपको आकाश मार्ग से अपनी गुफा के पास उड़ा ले गए। सदाशिव भगवान की गुफा का यह क्षेत्र पुरातन योगियों का प्रदेश कहलाता है। इस प्रदेश में अनेक योगी जो 500–700 वर्ष आयु के तपस्यारत हैं, सभी जटाजूट महात्मा चिरन्जीवी हैं। जब महाप्रभुजी छः माह की समाधि से उठते हैं तो सभी ऋषियों का समुदाय अपनी–अपनी जटाओं से बाल निकाल कर पुष्प माला एवं कन्दमूल उन्हें अर्पित करते हैं। सदाशिव भगवान के इस प्रदेश में श्री प्रभू जी लगभग ढाई वर्ष तक स्थानीय मर्यादा में रह कर तथा श्री महाप्रभु के श्री चरणों में दीक्षित होकर अवर्णनीय महत्वाकांक्षा से अष्ट सिद्धि–नव निधि आदि अनेक सिद्धियों के अधिपति बन गए। परिणामतः इन सिद्धियों को प्राप्त योगी पूर्णतः परम योगेश्वर हो जाता है। अर्थात् वह किसी भक्त को शक्ति संचार करने, प्राणदान देने, कुण्डलिनी महाशक्ति जागरण करने, कायक सिद्ध बनाने, खेचरी सिद्ध करने ... इत्यादि और स्वयं अन्तर्धान होने, पुनः प्रकट होने, मन चाहा रूप बनाने, शरीर छोटा–बड़ा करने, पक्षी की तरह आकाश में विचरण करने, एक ही समय भिन्न–भिन्न स्थानों पर कार्यरत रहने, जल पर भूमि की तरह चलने, दूर दर्शन–दूर श्रवण आदि–आदि कायक

सिद्धी में सक्षम हो जाता है।

अतः सुदूरदर्शी सदाशिव भगवान ने अपने संस्कारी एवं पीड़ा से तड़पते अपने लाड़ले बच्चों के उद्धार के लिए, अपने हृदय के टुकड़े प्रभु जी को पूर्ण सिद्ध शक्तिमान बनाकर इस अवनि मण्डल पर पदार्पण करने का शुभ आदेश दिया। कन्दराओं में बैठे तेजोमयी ऋषियों ने भी श्री प्रभु जी को बार–बार मन चाहा आशीर्वाद दिया। देदीप्यमान श्री प्रभु जी ने अनुगृहीत होकर साष्टांग प्रणाम कर गुरु आज्ञा को शिरोधार्य किया।

परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्म संस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे।।

यह सन् 1911 की बात है जब सिद्धों के महा सिद्ध श्री प्रभु जी दुर्गम पहाड़ों से उतर कर तीर्थ लाभ लेते–लेते गाँव संवाई पधारे। संवाई पधार कर श्री प्रभु जी ने संकीर्तन के साथ–साथ योग का प्रचार प्रसार प्रारम्भ किया। गुफा खुदवाई, तालाब–कुंआ बनवाया। आगन्तुकों के बिगड़े कार्य सुधारे। एक सूरदास कन्या को दृष्टि दी, एक सूखे खेत से ढेरों घीया उपलब्ध कराई। कुएं में हर की पौड़ी हरिद्वार के दर्शन कराए, आकाश में भगवान विष्णु के दिव्य दर्शन कराए, नीम की दातुन रोप कर आंवले का पौधा उगाया, एक गरीब गृहस्थी को अपना कमण्डल देकर उसकी कन्या की शादी धूम–धाम से सम्पन्न कराई, रोगियों को निरोग किया, इत्यादि रोजमर्रा कार्य किए तथा जीवन तत्त्व साधन, अष्टांग योग, प्राणायाम, नेति आदि षटकर्म और कुश्ती आदि अनेक कल्याणकारी कार्य चालू किए। संवाई, ऋषिकेश, कनखल आदि कई योग आश्रमों की स्थापना की और सुदूरदर्शी श्री प्रभु जी ने श्री मुलख राज, श्री गोपाला नन्द, स्वयं मुझे (श्री चन्द्र मोहन जी महाराज), श्री पारसनाथ, श्री नरसिंह मूर्ति, महात्मा ऋषि देवी, माता, द्रोपती (चतुर्भुजा) आदि अनेकों को दीक्षित कर सिद्ध योग योगेश्वर का दर्जा दिया। जिनके शिष्य प्रशिष्य देश के कोने कोने में कार्यरत हैं। योग सम्राट ने भारत वर्ष के अतिरिक्त अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, जापान, फ्रांस, जर्मन, इटली, स्पेन, शिकागो इत्यादि देशों में योग का डंका बजा कर लोप प्रायः योग को पुनः स्थापित किया। सृष्टि पालक श्री प्रभु जी कहा करते थे कि–

भीखा भूखा कोऊ नहीं, सब की गठरी लाल।
गांठ खोलन नहीं जानते, इस विधि भए कंगाल।।

तीनों लोकों में स्वच्छन्द विचरण करने वाले अजन्मा–निर्गुण श्री प्रभु जी ने लगभग तीन वर्ष अवधि पश्चात् संवाई से हिमालय पर्वत का रुख किया। जाते–जाते मार्ग में सूखा

धीमर (संवाई) को दर्शन–आशीर्वाद देना, देवराहा बाबा की खेचरी सिद्ध करवाना, वाम मार्गी के भैरव चक्र को नष्ट करना, नर्मदा मन्दिर का उद्धार, हरीराम उर्फ हरीहरानन्द जी को तत्व विजयी अजर अमर बनाकर नेपाल के शीश गिरी पहाड़ी पर गुफा में बैठा दिया। जो आज भी अपनी साधना से तीन माह में एक बार उठते हैं। इसके अतिरिक्त एक तान्त्रिक को शरण देना, एक दुराचारिणी रामरति को जामुनियाँ तट पर दुर्गा माता का दर्जा देना जो आज भी बिहार प्रान्त के चम्पारण जिले के बाराचकिया से उत्तरी छोर पर मात्र 13 किमी. दूरी पर "दुर्गा शक्ति साधना" नाम से विख्यात है, इत्यादि अनेकानेक अद्भुत कार्य किए, जिनको मैं पहले भी कह चुका हूँ।

इस प्रकार श्री प्रभु जी ने इस भूमि पर योग के बीज बिखेर कर सात सौ वर्षों से मृत प्राय: दास्ता को पूर्णत: जाग्रत किया। और अपने अमूल्य योग जखीरे को दोनों कर कमलों द्वारा हम सब पर लुटाया है। अब यह तुम पर निर्भर करता है कि कौन कितनी योग निधि को संचय कर अपनी योग गठरी को कितना बड़ा बनाता है। इस प्रयाग क्षेत्र में जो भजन कर लेगा वह रेख पर मेख लगवाएगा। आनन्द कन्द श्री प्रभु जी अपने हर बच्चे को नेपाल हिमालय में बैठे–बैठे देखते हैं। अत: चलते फिरते, उठते बैठते तथा प्रात: 5–7 बजे तक तथा सायं 6–7 बजे तक गुरु मन्त्र का जाप करते रहना चाहिए। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।

सलाह तो अनेक प्राप्त करते हैं, किन्तु उससे लाभ उठाना बुद्धिमानों को ही आता है।

—साइरस

हंस योग और नाद

(श्री पं. मनोहरलाल शर्मा, कोलकाता)

नाद के सम्बन्ध में कुछ अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता है। सूक्ष्म प्राण के उच्चार को नाद कहते हैं। कुण्डलिनी शक्ति से नाद की उत्पत्ति होती है। **'प्रकृतिः–निश्चला परावांगरूपिणी पर प्रणवात्मिका कुण्डलिनी शक्तिः'**। प्रपंचसार तन्त्र विवरण, पटल 30। निश्चल प्रकृति परावाणी रूप प्रणव स्वरूप वाली कुण्डलिनी शक्ति है, यानी ओंकार, कुण्डलिनी, परावाक् एक ही वस्तु है। शारदा तिलक प्रथम पटल में लिखा है–

सच्चिदानन्दः दविभवात्।
सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो
नादाद् बिन्दुः समुद्भवः॥7॥

सच्चिदानन्द कला सहित (सगुण) परमेश्वर से शक्ति उत्पन्न हुई, शक्ति से नाद, नाद से बिन्दु उत्पन्न हुआ। यह नाद शिव शक्त्यात्मक है। नाद सर्वप्रथम परावाणी के रूप में मूलाधार से उठता है। पुनः मणिपुर (नाभिचक्र) में आकर प्राण से संयुक्त होकर पश्यन्ती वाणी के रूप में बदल जाता है। फिर अनाहत (हृदय चक्र) में बुद्धि से संयुक्त होकर मध्यमा वाणी के रूप में परिणत होता है। वही नाद कण्ठ में आकर वर्णात्मिका रूप बैखरी वाणी बन जाता है, जिससे कि–जगद्व्यवहार चलता है। नाद में दो अंश होते हैं– ध्वनि–अंश तथा वर्णांश। प्रत्येक अक्षर (अ से क्ष तक) में दोनों अंश विद्यमान रहते हैं। सब वर्णों का जनक नाद ही है। इसे प्रणव की ध्वनि भी कहते हैं। नाद प्रकाशमय होता है। भगवती कुण्डलिनी से निरन्तर नाद रूप अव्यक्त ध्वनि प्रवाहित होती रहती है, इसे अनाहत ध्वनि अथवा नाद कहते हैं। यह नाद स्पंदन ही वायु रूप प्राण बन जाता है, और हंसः हंसः का अजपा जप करता है।

साधारण ध्वनि और अनाहत ध्वनि में अन्तर समझ लेना चाहिए। जो ध्वनि किसी का आश्रय लेकर उठे, उसे आहत ध्वनि कहते हैं, जैसे ढोल और डंके के संयोग से, वेणु और वायु के संयोग से तार के स्पंदन से उत्पन्न शब्द आहत कहलाता है। आहत शब्द

में भिन्न-भिन्न प्रकार की अन्य ध्वनियाँ भी मिश्रित रहती हैं। यह शब्द जड़ होता है। अनाहत ध्वनि प्रकाशमय, नित्य उदित, निरपेक्ष, स्वच्छ चैतन्य होती है। यह प्राणमयी चैतन्य शक्ति का घोष है।

कुण्डलाख्या महाशक्ति
स्तृतीयाप्युपचर्यते।
ध्वनिरूपां यदा स्फोट-
स्त्वदृष्टाच्छिवविग्रहात्।।६२।।
सेसरत्यतिवेगेन
ध्वनिनापूरयञ्जगत्।
स नादो देव देवेशः
प्रोक्तश्चैव सदा शिवः।।६३।।

(नेत्रतंत्र, २१ अधिकार)

ओंकार की आरोहण क्रम से बारह कलाएँ हैं। अ, उ, म, बिन्दु, अर्धेन्दु, निरोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना, उन्मना। इन कलाओं में बिन्दु से लेकर समना कला तक अष्ट वर्ग समष्टि नाद कहलाता है। ये सब ध्वनियाँ हैं, और उत्तरोत्तर सूक्ष्म होती जाती हैं। उन्मना नाम की शिवरूपिणी परम सूक्ष्म शक्ति है। यह अपने स्वरूप को छिपाने के खेल की इच्छा से व्योम रूप होकर समना नाम से स्फुरित होती है। इससे शून्य नामक व्यापिनी शक्ति उदित होती है। व्यापिनी से भुजंगाकार कुण्डली नाम की महाशक्ति का जन्म होता है। इसके अनन्तर निराकार दृष्ट रूप पर नादात्मक-प्रकाशानन्दघन शिव से स्फोटात्मक शब्दब्रह्म अपनी ध्वनि से सारे जगत को पूरित करता हुआ अत्यन्त वेग से फैलता है। इस नाद को देवों का स्वामी सदाशिव कहा जाता है। यह परावाक् वाणी रूप उन्मना ही है। यही नाद आगे जाकर पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी वाणी के रूप में पलट जाता है।

हंस, प्राण साधना से नाद सुनाई पड़ने लगता है जिसमें मन लग जाता है। अन्त में प्राण सहित मन नाद में लय हो जाता है, और नाद चेतन शक्ति में। नाद श्रवण के लिए हठ योग में कई उपाय बताये हैं, क्योंकि नादानुसंधान को समाधि का अनन्य साधन माना है। हंसोपनिषद् में कुण्डलिनी जगा कर नाद की अनुभूति का उपाय बताया है। 'अथोनादं आधारत् ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त शुद्ध स्फटिक संकाशं स वै ब्रह्म परमात्मा इति उच्यते।' कुण्डलिनी

उत्थापन से नाद की अनुभूति होती है। नाद कुण्डलिनी शक्ति से उत्पन्न मूलाधर से उठ कर सहस्रार चक्र तक जाता है। शुद्ध नाद यानी दशवें नाद का वर्ण स्वच्छ स्फीटिक मणि के सदृश होता है। दशम नाद ही ब्रह्म परमात्मा कहा जाता है। हंसोपनिषद् आगे लिखते हैं, स एष जप कोटियां–नादमनुभवति एवं सर्वं हंसवशात् नादो दशविधो जायते'। वह हर हंस जापी हंस मंत्र के जपकोटि पर पहुँचने से, यानी जब जप बहुत सूक्ष्म हो जाता है तो ध्यान में परिणत हो जाता है और नाद का अनुभव होता है। यहाँ कोटि का अर्थ करोड़ नहीं है अपितु उच्च श्रेणी है। इस प्रकार यह सब यानी ध्यान योग भी हंस साधना के प्रभाव से प्राप्त होता है। यह नाद दश प्रकार का होता है। दश नादों का विधान हंसोपनिषद में दिया है। दशवें नाद यानी मेघनाद का अभ्यास करना चाहिए।

लयावस्था कठिन उपलब्धि है। महान् पुण्य के उदय हुए बिना लयावस्था अथवा ध्यान स्थिति प्राप्त नहीं होती, तो भी हंसयोग की साधना से लयस्थिति सिद्ध हो जाती है। इसी को योगियों की संप्रज्ञात समाधि कहते हैं।

दुःखाढ्यं च दुराराध्यं
दुष्प्रेक्ष्यं च दुराश्रयम्।
दुर्लभं दुस्तरं ध्यानं
मुनीनां च मनीषिणाम्।।२।।

(तेजोबिन्दुपनिषद्)

ध्यान वृत्ति कष्ट साध्य है, इसका स्वायत्त करना कठिन है, ध्यानावस्था में ज्योति का दर्शन कठिन है, इसका आश्रय कठिन है, इसकी प्राप्ति दुर्लभ है, बाह्य जागतिक आसक्तियों को पार करके ध्यान प्राप्ति कठिन है, मननशील व्यक्तियों के लिए भी तथा बुद्धिमानों के लिए भी। ऐसा क्यों है?

चंचलं हि मनः कृष्ण
प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये
वायोरिव सुदुष्करम्।।

(गीता)

हे कृष्ण! मन चंचल, इन्द्रियों का मथन करने वाला, बलवान और जिद्दी है। इसको काबू में लाना वायु को काबू में लाने के सदृश कठिन है। यह महान् प्राप्ति भी हंस योग

साधक को अनायास ही सिद्ध हो जाती है, क्योंकि हंसयोगी को केवल प्राणगीत पर दृष्टि लगानी पड़ती है, करना कुछ नहीं पड़ता। यदि सिद्ध योगी गुरु साधक पर शक्तिपात कर दें, तो लयावस्था बहुत शीघ्र प्राप्त हो जाती है। नादानुभूति न केवल कुण्डलिनी जाग्रत होने पर ही होती है, अपितु प्राणायाम के सर्व नाड़ियों के शुद्ध होने पर भी नाद सुनाई पड़ता है। योग तारावलि में भगवत्पाद कहते हैं–

सरेचपूरैरनिलस्य कुम्भैः,

सर्वासु नाड़ीपु विशोधितासु।

अनाहताख्यो बहुभिः प्रकारै

रन्तः प्रवर्तेतसदानिनादः।।३।।

रेचक, पूरक तथा कुम्भक प्राणायामों से जब सब वायु वाहिनी नाड़ियाँ मल से शुद्ध हो जाती हैं, तब अनाहत नाम का निनाद बहुत प्रकार से भीतर सुनाई पड़ता है। नाद में चित्त रमण करता है। प्रबोध सुधाकर में भगवत्पाद लिखते हैं–

भेरीमृदंगशंखाद्याऽऽहत

नादे मनः क्षणं रमते।

किं पुनरनाहतेऽस्मिन्मधुम–

धुरेऽखण्डिते स्वच्छे।।१४६।।

भेरी, मृदंग, शंखादि यन्त्रों से उत्थित आहत नाद में जब मन तत्क्षण रमण करता है तो फिर अनाहत नाद में जो कि मधु–सा मीठा (अतिकर्णप्रिय) निरन्तर बहने वाला तथा शुद्ध है, मन क्यों न रमण करेगा अर्थात् वहाँ तो चिपक ही बैठेगा। चित्त जब विषयों से उपरत होता है तो भी नाद श्रवण होता है, यथा–

चित्तं विषयोपरमाद्यथा

यथायाति नैश्चल्यम्।

वेणेखि दीर्घतरः तथा

श्रूयते नादः।।१४७।।

ज्यों–ज्यों चित्त विषयों से उपरत होता जायेगा, त्यों–त्यों निश्चल होता जायेगा, और वैसे ही फिर वंशी के नाद की भाँति दीर्घनाद सुनाई पड़ेगा, यानी सूक्ष्म से सूक्ष्मतर नाद सुनाई पड़ेगा।

नादाभ्यन्तर्वर्ति ज्योति
यद्वर्तते हि चिरम्।
तत्र मनो लीनं चेन्न पुनः
संसारबन्धाय।।१४८।।
परमानन्दानुभवात्सुचिरं
नादानुसन्धानात्।
श्रेष्ठश्चित्तलयोऽयं सत्स्वन्य-
लयेष्वनेकेषु।।१४९।।

नाद के भीतर जो ज्योति निवास करती है वहाँ यदि मन चिरकाल तक विद्यमान रहे और लीन हो जाये तो फिर उसको संसार बन्धन में नहीं रहना पड़ता। क्योंकि नादानुसं-धान के माध्यम से वह चित्त परमानन्द की अनुभूति करता है। नाना प्रकार के फलदायी लय-विधानों में चित्त लय के लिए नादानुसंधान श्रेष्ठ उपाय है। ।।१४८-१४९।।

न केवल नाड़ी शोधन से ही नाद सुनाई पड़ता है, वरन् आत्म चिन्तन से भी नाद सुनाई पड़ता है। प्रबोध सुधाकर में भगवत्पाद लिखते हैं--

यावत्क्षणं क्षणार्धं स्वरूप-
परिचिन्तनं क्रियते।
तावद्दक्षिणकर्णे त्वनाहतः
श्रूयते शब्दः।।१४४।।

जिस क्षण भी यदि कोई अपने स्वरूप अर्थात् आत्मा का सम्यक् चिन्तन आधे क्षण भी करता है उसी क्षण दक्षिण कर्ण में अनाहत शब्द सुनाई पड़ता है।

अब नाद श्रवण की अवधि बताते हैं। शब्द आकाश का गुण है, जब तक आकाश की भावना बनी रहेगी तब तक शब्द सुनाई पड़ेगा।

तावदाकाशसंकल्पो
यावच्छब्दः प्रवर्तते।
निःशब्दं तत्परं ब्रह्म
परमात्मेति गीयते।।१०१।।
यत्किंचिन्नादरूपेण
श्रूयते शक्तिरेव सा।

यस्तत्वांतो निराकारः

स एव परमेश्वरः।।१०२।।

जब तक अनाहत शब्द का श्रवण होता है तब तक आकाश तत्व में मन का अवस्थान रहेगा, क्योंकि शब्द आकाश का धर्म है। नाद का अन्त होने पर यानी निःशब्द अवस्था को ब्रह्म परमात्मा कहा जाता है। उसमें नाद मन सहित लय हो जाता है। जो भी शब्द नाद रूप से श्रवण होता है, वह शक्ति ही है, जिसमें समस्त तत्वों का लय हो जाता है वह ही निराकार परमेश्वर है। सर्व वृत्तियों के क्षीण होने पर स्वरूप में अवस्थान ही परम लक्ष्य है।

अब प्राणायाम द्वारा नाड़ी–शोधन की कष्ट साध्यता बताते हैं। जब तक सुषुम्ना नाड़ी में मल रहेगा जब तक उसमें से प्राण संचार नहीं हो सकेगा। प्राणायाम द्वारा नाड़ी शोधन होने पर नाद सुनाई पड़ेगा। हठ योग प्रदीपिका में लिखते हैं–

चले वाते चल चित्त

निश्चले निश्चलम् भवेत्।

योगी स्थाणुत्वमाप्नोति

ततो वायुं निरोधयेत्।।२/२।।

मलाकुलासु नाड़ीषु

मारुतो नैव मध्यगः।

कथं स्यादुन्मनीभावः

कार्यसिद्धिः कथं भवेत्।।२/४।।

प्राणायामं ततः कुर्यान्नित्यं

सात्विकयाधिया।

यथा सुषम्नानाड़ीस्था

मलाः शुद्धिं प्रयांति च।।२/६।।

यदा तु नाड़ीशुद्धिः

स्यात्तथा चिह्नानि बाह्यतः।

कायस्य कृशता कान्तिस्तदा

जायते निश्चितम्।।२/१९।।

यथेष्टधारणं वायोर

नलस्य प्रदीपनम्।

नादाभिव्यक्तिरारोग्यं

जायते नाड़ी शोधनात्।।२/२०।।

(हठयोग प्रदीपिका)

प्राण चलायमान होने से चित्त चलायमान होता है, प्राण निश्चल होने पर मन भी निश्चल हो जाता है। मन स्थिर होने पर योगी स्थाणु की भाँति स्थिर हो जाता है। इसलिए प्राण जप करना चाहिए। नाड़ियों में मल भरने से प्राण सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश नहीं पा सकता, तब किस प्रकार उन्मनी अवस्था प्राप्त होगी, और कार्य सिद्धि (जीवन्मुक्ति) होगी? इसलिए सुषुम्ना में प्रविष्ट मल परिशोधन के लिए शुद्ध बुद्धि से प्राणायाम नित्य करना चाहिए। नाड़ी शुद्धि के चिह्न बताते हैं—शरीर का पतला और चमकदार होना, प्राणायाम से जठराग्नि का प्रदीपन, नाद का आविर्भाव तथा आरोग्यता प्राप्ति।

प्राणायाम से नाड़ी शोधन कष्टसाध्य है। इसके लिए तीन महीने तक अस्सी–अस्सी प्राणायाम प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल तथा अर्धरात्रि में (यानी ३२० प्राणायाम) नित्य करने होंगे। साधारणतः इसमें सात–आठ घण्टे लगते हैं। फिर घी दूध का भोजन चाहिए। परंतु हंसयोग की साधना से नाड़ी अनायास ही शुद्ध हो जाती है और नाद श्रवण गोचर होता है। हंस योगी भी साधारण से प्राणायाम का आश्रय ले सकता है। नादबिन्दूपनिषद् में लिखा है—

यत्र कुत्रापि वा नादे

लगति प्रथमं मनः।

तत्रैव सुस्थिरीभूय तेन

सार्धं विलीयते।।३८।।

मकरन्दपिबन्भृंगो

गन्धान्नापेक्षते यथा।

नादासक्तं तथा चित्तं

विषयं न हि कांक्षति।।४२।।

नादश्रवणतः क्षिप्रमन्त

रंग–भुजंगमः।

विस्मृत्य विश्वमेकाग्र:

कुत्र चिन्नहि धावति।।४३।।

मनोमत्त गजेन्द्रस्य

विषयोद्यान चारिण:।

नियंत्रणे समर्थोऽयं

निनादनिशितांकुश:।।४४।।

जहाँ भी सूक्ष्म अथवा सूक्ष्मतर नाद में जब मन लग जाता है तो वहीं स्थिर होकर उसी के साथ लय हो जाता है। जैसे पुष्प के रस को पीता हुआ भंवरा गन्ध की अपेक्षा नहीं करता, उसी प्रकार नाद में आसक्त हुआ चित्त विषयों की इच्छा नहीं करता। अनाहत नाद के श्रवण से शीघ्र ही मन रूपी सर्प सर्व विश्व का विस्मरण करके एकाग्र हुआ किसी विषय की ओर नहीं दौड़ता। मन रूपी मस्त हाथी को, जो कि विषय रूपी बगीचे में भ्रमण करता है, रोकने में नाद रूपी तीक्ष्ण अंकुश समर्थ है।

नाद श्रवण हंसजापी के साधना–पथ में ही आता है उसका आश्रय लेकर परम गति को प्राप्त होता है। हठ योग में नादानुसंधान को लय का मुख्य साधन कहा है। नादानु–सन्धान को अपनाने वाले योगियों को आरंभ, घट, परिचय तथा निष्पत्ति चार अवस्थायें कही हैं। पहली तीन अवस्थाओं में ब्रह्मग्रंथि, विष्णु ग्रंथि, रुद्र ग्रंथि भेदन होती हैं। निष्पत्ति अवस्था सिद्धावस्था कही गई है। इस पर अधिक कहना अनावश्यक है, क्योंकि हमारा विषय हंसोपनिषद् है।

अब नाद के भेदों पर कुछ कहते हैं। हंसोपनिषद में नाद के दश भेद कहे हैं– १. चिणि, २. चिञ्चिणी, ३. घंटानिनाद, ४. शंखनाद, ५. तन्त्रीनाद, ६. तालनाद, ७. वेणुनाद, ८. मृदंगनाद, ९. भेरीनाद, १०. मेघनाद। ये उत्तरोत्तर अधिक सूक्ष्म हैं। प्रथम ९ नादों को त्याग कर दशवें मेघनाद के श्रवण का अभ्यास करे।

'तस्मिन् मनो विलीयते'। उसमें मन लय हो जाता है। ये ध्वनियाँ नादानुसारी हैं क्योंकि ध्वनियाँ अस्पष्ट होती हैं, और उनकी सही अभिव्यक्ति शब्दों में नहीं की जा सकती।

स्वच्छन्द तन्त्र में कहा है कि नाद, जोकि स्वयं अव्यक्त और ध्वनि रूप है, आठ भेदों में व्यक्त होता है ऐसा कहा गया है–

अष्टधा स तु देवेशि

व्यक्त: शब्द प्रभेदत:।

घोषो रावः स्वनः शब्दः

स्फोटाख्यो ध्वनिरेवल॥६॥

झंकारोध्वङ्कृतश्चैव

अष्टौ शब्दाः प्रकीर्तिताः।

हे देवताओं की स्वामिनि! नाद के आठ व्यक्त भेद हैं—घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फोट, ध्वनि झंकार तथा ध्वङ्कृति (मेघध्वनि)। ये आठ प्रकार के नाद उस नवम महानाद के भेदमात्र हैं जो सर्वत्र व्यापक रूप से विद्यमान है।

नादानुसन्धान स्थूल बुद्धि वालों के लिए भी एक स्वतन्त्र साधन है—

अशक्य—तत्त्वबोधानां

मूढानामपि संमतम्।

प्रोक्तं गोरक्षनाथेन

नादोपासनमुच्यते॥

मूढ़ बुद्धि होने के कारण जो ब्रह्म विचार में असमर्थ हैं, उनके लिए भी गुरु गोरक्षनाथ ने नादानुसन्धान अनुकूल साधन कहा है। फिर विद्वानों के लिए तो कहना ही क्या है। अतः नाद की उपासना (अनाहत ध्वनि की साधना) कही जाती है।

चन्द्रापालिक द्वारा पूछा जाने पर योगेश्वर घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता नामक ग्रन्थ के पाँचवें उपदेश में नाद श्रवण विधि, नाद भेद तथा नादानुसंधान का फल बताया है। उसी ग्रन्थ से उद्‌धृत करके लिखते हैं—

अर्धरात्रि गते योगी

जन्तूनां शब्द वर्जिते।

कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां

कुर्यात् पूरक—कुम्भकम्॥७७॥

शृणुयाद् दक्षिणे कर्णे

नादमन्तर्गतं शुभम्।

प्रथमं झिंझानादं च वंशी

नाद ततः परम्॥७८॥

मेघ—झर्झर—भ्रमरी

घंटाकास्यं ततः परम्।
तुरी–भेरी–मृदंगादि–
निनादनिक–दुन्दुभिः।।७९।।
एवं नानाविधं नादं
जायते नित्यमभ्यसात्।
अनाहतस्य शब्दस्य
तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।।८०।।
ध्वने–रन्तर्गत–ज्योति
ज्योतिरन्तर्गतं मनः।
तन्मनो विलयं याति
तद् विष्णोः परमं पदम्।।८१।।

अर्थ—आधी रात बीतने पर जब किसी जन्तु का शब्द सुनाई न दे, उस काल एकान्त स्थान में योगी अपने दोनों हाथों से दोनों कानों को बन्द करके पूरक–कुम्भक का अनुष्ठान करे। ऐसा करने पर योगी दाहिने कान में नाना प्रकार के शुभ भीतर के नादों को श्रवण करे। अब नाद की भिन्न–भिन्न ध्वनियाँ बताते हैं। पहले झींगुर के शब्द जैसी ध्वनि, फिर वंसी जैसी ध्वनि, फिर मेघ, झर्झर बाजे की ध्वनि, फिर भौरे के गुञ्जार जैसी ध्वनि फिर कांसे के पात्र, तुरही, भेरी, मृदंग आदि के शब्द, आनक (नोबत बाजा) दुन्दुभि के नाद जैसा शब्द सुनाई पड़ता है। इस प्रकार नानाविधि नाद नित्य अभ्यास से सुनाई पड़ते हैं। अब नाद का रहस्य खोलते हैं। अनाहत शब्द की जो ध्वनि है, उस ध्वनि के भीतर एक मोहक प्रकाश होता है, उस ज्योति के भीतर प्रविष्ट मन लय को प्राप्त होता है, वही ज्योति ही विष्णु (आत्मा) का परम पद धाम है।

नादबिन्दूपनिषद् में प्रणव से नाद की उत्पत्ति बताई है। प्रणव दो प्रकार का होता है। पर–प्रणव, परब्रह्म तथा अपर–प्रणव, अपर ब्रह्म यानी शब्द ब्रह्म। पहले बता चुके हैं कि प्रणव और कुण्डलिनी और शक्ति एक ही वस्तु के नाम हैं, इसे परा वाणी भी कहते हैं। ब्रह्म–प्रणव शब्दातीत है, अपर ब्रह्म प्रणव शब्द–ब्रह्म है।

ब्रह्म प्रणव संधानं नादो
–ज्योतिर्मयः शिवः।
स्वयमाविर्भवेदात्मा

मेघापायेऽशुमानिव।।३०।।

सिद्धासने स्थितो योगी

मुद्रां संधाय वैष्णवीम्।

शृणुयाद्–दक्षिणोकर्णे

नादमन्तर्गतं सदा।।३१।।

अभ्यस्यमानो नादोऽयं

ब्रह्ममावृणुते ध्वनिः।

पक्षाद्विपक्षमखिलं

जित्वा तुर्यं पदं व्रजेत्।।३२।।

श्रूयते प्रथमाभ्यासे

नादो न नानाविधो महान्।

वर्धमाने तथाभ्यासे

श्रूयते सूक्ष्म–सूक्ष्मतः।।३३।।

आदौ जलधि–जीमूत

भेरी–निर्झरसंभवः।

मध्ये मर्दलशब्दाभो

घंटा–काहलजस्तथा।।३४।।

अन्ते तु किंकणी–वंश–

वीणा–भ्रमरनिःस्वनः।

इति नानाविधा नादाः

श्रूयन्ते सूक्ष्मसूक्ष्मतः।।१५।।

अर्थ–नाद में दो अंश विद्यमान होते हैं–एक अंश ध्वनि और एक अंश प्रकाश। उसमें प्रकाशांश तो स्वयं आत्मा है और ध्वनि उसका आवरण, आच्छादक उपाधि है। ब्रह्मरूप प्रणव का ध्यान करना चाहिए। इससे नादरूप ज्योतिर्मय सदा शिव भगवान जो कि स्वयं अपनी आत्मा हैं, का प्राकट्य होगा। कब? जैसे बादल हटने पर महाप्रकाशमान सूर्य का दर्शन होता है, वैसे ही आकाशतत्व समद्भूत शब्द से उपहित नाद में से शब्दांश दूर होने पर ज्योतिर्मय रूप परमात्मा प्रकट होता है। इसकी साधना किस प्रकार होती है? सिद्धासन पर बैठ कर योगी वैष्णवी मुद्रा (हाथों से कानों को बन्द करना) जमा ले और दक्षिण कर्ण में भीतर के नाद को सुने (बाहर के शब्द को न सुने)। अभ्यास किया हुआ

यह नाद ब्रह्म का वरण कर लेगा। एक दो पक्ष में ही ध्वन्यंश को जीत कर योगी, तुर्यपद, लय को प्राप्त होगा। अभ्यास के आरम्भ में नाना प्रकार का महान् यानी स्थूलनाद सुनाई पड़ता है। इसके पश्चात् अभ्यास के बढ़ जाने पर सूक्ष्म और अति सूक्ष्म नाद सुनाई पड़ता है। आरम्भ में समुद्र की गर्जना, बादल की गर्जना, भेरी और निर्झर बाजे से उत्पन्न शब्द की भाँति नाद सुनाई पड़ता है। इसके पश्चात् श्रवण वृत्ति सूक्ष्म होकर सूक्ष्म नाद का श्रवण करती है। मर्दल (एक प्रकार का ढोल) के शब्द की भाँति, घण्टा, काहल (झांझ) की ध्वनि के सदृश सूक्ष्म नाद की ध्वनि होती है। अन्त में सूक्ष्मतर नाद यथा क्षुद्रघंटिकाओं, वंशी, वीणा, भ्रमर की गुनगुन ध्वनि के सदृश सूक्ष्मतर ध्वनि को सुनता है। (चूँकि नाद की ध्वनि अस्पष्ट होती है अतः भिन्न–भिन्न आचार्यों ने अपने–अपने अनुभव के आधार पर ध्वनि अनुसारी भिन्न–भिन्न शब्दों से दृष्टान्त दिये हैं)।

इस भाँति नाना प्रकार के सूक्ष्म अति सूक्ष्म नाद सुनाई पड़ते हैं। परन्तु यह नाद सूक्ष्म होते–होते अन्त में निःशब्द होकर ज्योतिरूप हो जाता है। मन और प्राण दोनों का ही लय हो जाता है।

जहाँ तक नाद है, वहीं तक आकाश है, वहीं तक शब्द है। जहाँ नाद का अन्त है, वहीं आकाश का अन्त है और वहीं शब्द का। परमात्मा निःशब्द पद है, वही उन्मनी अवस्था है।

सशब्दश्चाक्षरे क्षीणे
निःशब्दं परमं पदम्।
सदानादानुसंधानात्संक्षीणा
वासना तु या।।४९।।
निरञ्जने विलीयेते
मनोवायू न संशयः।
नाद कोटि सहस्त्राणि
बिन्दु कोटि शतानि च।।५०।।
सर्वे तत्र लयं यान्ति
ब्रह्मप्रणवनादके।
सर्वावस्था–विनिर्मुक्तः सर्व
चिन्ता विवर्जितः।।५०।।

अर्थ–अक्षर शब्द ब्रह्म के क्षीण होने पर निःशब्द यानी मौन परमात्मा पद प्राप्त होता है। चित्त में विक्षेप उत्पन्न करने वाली वासना नाद के निरंतर अभ्यास से क्षीण हो जाती

है, वासना के अभाव में अतरंगित मन नादान्तर्गत ज्योति में लय हो जाता है। सर्वोपाधिरहित निरंजन निर्गुण निःशब्द ब्रह्म में मन और वायु (प्राण) दोनों ही लय हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं करना न केवल मन और प्राण ही लय होते हैं, अपितु करोड़ों सहस्र प्रकार के घनघोर नाद और करोड़ों शत प्रकार के बिन्दु भी निःशब्द पद में लय हो जाते हैं। योगी उस स्थिति को पाकर सब अवस्थाओं—जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति से मुक्त और सब चिन्ताओं से रहित हो जाता है।

दृष्टिः स्थिराः यस्य बिना सपृश्यम्,
वायुः स्थिरो यस्य बिना प्रयत्नम्।
चित्तं स्थिरं यस्य—विनाऽवलम्बम्,
स ब्रह्म तारान्तरनाद रूपः।।५६।।

(नादबिन्दूपनिषद्)।

जिस योगी की दृष्टि बिना आकार का आश्रय लिए ही स्थिर है, जिसका प्राण बिना प्रयत्न के ही स्थिर है, जिसका चित्त बिना आधार के ही स्थिर है, वह साक्षात तारक ब्रह्म अन्तरनाद रूप ही है। श्री विज्ञान भैरव ग्रंथ में भी नादानुसंधान से परब्रह्म की प्राप्ति कही है। भगवान् भैरव की वाणी भी अनोखी ही है—

अनाहते पात्रकर्ण—
भग्नशब्दे सरिद्—द्रुते।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः
परंब्रह्माधिगच्छति।।३८।।

अर्थ—कर्ण ही जिसको धारण करने वाला पात्र है अर्थात् कानों में सुनाई देने वाला (बाहर सुनाई न देने वाला) अनाहत शब्द, यानी नित्य उदित नाद, नदी के प्रवाह की भाँति द्रुतगामी तथा अखण्डित, विच्छेद रहित गति से प्रवाहित होता रहता है। इसी को शब्दब्रह्म कहते हैं। शब्द ब्रह्म में प्रवीण यानी शब्द ब्रह्म को पार करने वाला ही निःशब्द परम ब्रह्म को प्राप्त करता है। शब्द जाल से अविमुक्त परम ब्रह्म को नहीं पा सकता।

हंस योग की महिमा आपको अवगत हो गई होगी। इससे प्राणायाम की सिद्धि, नाड़ियों का शोधन, कुण्डलिनी जागरण, आरोग्यता, देह कान्ति, लय तथा जीवन्मुक्ति सभी कुछ प्राप्त होते हैं।

(क्रमशः)

ऐसे मेरे सद्‌गुरुदेव

"महात्मा अपना परिचय दें"

हेमराज चोपड़ा, मण्डी (हि.प्र.)

यह उन दिनों की बात है जब अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का योग प्रसार कार्यक्रम उनके अनन्य भक्त प्राचार्य श्री ओमप्रकाश जी की चण्डीगढ़ की कोठी में हुआ करता था। बाद में तो कार्यक्रम श्री रामचन्द्र कालिया (अब दिवंगत) जी के चण्डीगढ़ में सैक्टर 15–डी मकानसंख्या 3201 में होने लगे थे। ऐसे ही एक योग प्रचार कार्यक्रम में सद्‌गुरुदेव महाराज प्रवचन कर रहे थे। ऐसे में एक भगवावस्त्र–धारी सज्जन श्री गुरुदेव का साधारण अभिवादन करके उनके सम्मुख खड़े हो गए। उनके मुख पर ब्रह्मचर्य का तेज झलक रहा था। वे अपने कुछ शिष्यों सहित वहां पंडाल में आए थे। हमारे–आपके गुरुदेव तो अन्तर्यामी ठहरे। सम्मुख व्यक्ति के मनोभावों को तुरन्त जान लेते थे। वैसे भी अपने श्रीमुख से उन्होंने कहा भी है कि जो व्यक्ति हमारे सामने आता है, उसके मनोभावों के अतिरिक्त उसके तीन जन्मों की जानकारी हमें तुरन्त हो जाती है। किन्तु इस भगवावेष धारी व्यक्ति को मानो बिल्कुल नहीं जानते हों, ऐसा अभिनय करते हुए उन्होंने पूछ लिया–

"महात्मा अपना परिचय दें"

यह सुनते ही उन महात्मा का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। अपनी दाईं भुजा उठाकर अभिमान पूर्वक कहने लगे, "योगीराज ब्रह्मचारी सूर्यदेव को भारतवर्ष में ऐसा कौन है जो नहीं जानता। भारतवर्ष की अखण्डता के लिए किए गए मेरे कार्य को सभी जानते हैं। आश्चर्य है, आप ही को मालूम नहीं।" इतना सुनकर महाराज जी ने उन्हें एक फल उठाकर दिया और प्रेमपूर्वक बैठने के लिए कहा। किन्तु सूर्यदेव अपने आपको किंचित अपमानित सा अनुभव कर वहाँ बैठे नहीं अपितु अपनी शिष्य मंडली सहित वहाँ से लौट गए।

पंजाब प्रांत में उन दिनों कांग्रेस की सरकार थी और सरदार प्रताप सिंह कैरों वहां

के मुख्यमंत्री थे। उनके समय में पंजाब को पंजाबी सूबा बनाने की मांग सिर उठा रही थी। इसके समर्थन में जगह–जगह आन्दोलन–प्रदर्शन हो रहे थे। अपनी बात मनवाने के लिए एक प्रभावशाली सिख नेता मास्टर तारासिंह अनशन पर बैठ गए। वहीं हिन्दुओं का एक वर्ग ऐसा था जो इस मांग को राष्ट्र विरोधी समझ कर इसका विरोध कर रहा था और एक सज्जन इस मांग के विरोध में स्वयं भी अनशन पर बैठ गए। ये सज्जन और कोई नहीं अपितु सूर्यदेव ही थे। सब जगह इन अनशनों की चर्चा हो रही थी। मास्टर तारासिंह तो 21 दिनों से अधिक अनशन नहीं झेल सके। उन्होंने अनशन तोड़ दिया किन्तु श्री सूर्यदेव इसके बाद भी कई दिनों तक अनशन पर बैठे रहे और इसे तभी तोड़ा जब सरकार की ओर से लिखित आश्वासन मिल गया कि पंजाबी सूबा (सिख सूबा) नहीं बनेगा। इस घटना से उनकी चहुं ओर ख्याति फैल गई। यही सोचकर ये सद्गुरु महाराज के पास आए थे कि उनका मान–सम्मान होगा, गुरुदेव उनकी बड़ाई करेंगे किन्तु ऐसा न हुआ। इससे उनका मन आक्रोश से भर गया किन्तु कुछ कह न सके और चुपचाप लौट गए।

इसके दूसरे दिन भी योग प्रचार कार्यक्रम यथावत चल रहा था। तभी सबने आश्चर्यपूर्वक देखा कि वही योगीराज सूर्यदेव अपनी विशाल शिष्य मंडली सहित आ रहे हैं और यह क्या? वे महाराज के चरणों में गिर पड़े और कई प्रकार से स्तुति करने लगे। उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा, "महाराज कल तक मैं आपको एक प्रचारक संत ही समझता था, इसलिए आपको उचित सम्मान नहीं दे पाया किन्तु अब मुझे पता चल गया है कि इस धोती कुर्ते में कितनी महान आत्मा छिपी है? आपके योग ऐश्वर्य का कोई अन्त नहीं है जिसे आपने अत्यन्त कुशलता से छुपा रखा है। मुझे क्षमा करें"। महाराज जी ने उन्हें उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। उनके महान कार्य की भूरि–भूरि प्रशंसा की; उन्हें और उनके शिष्यों को भेंट देकर वहां से रुखसत किया।

एक नहीं ऐसी अनेकों घटनाएं हैं जिनके द्वारा सद्गुरु महाराज जी के योग ऐश्वर्य का परिचय मिलता है। उनका हृदय अत्यन्त विशाल था। वे अधम से अधम व्यक्ति को भी अपनाने से पीछे नहीं हटते थे। उनके दुष्कर्मों का भार वहन करने से किंचित भी संकोच नहीं करते थे। ऐसी ही एक घटना के विषय में चिरंजीव सुबोध (सुपुत्र मुम्बई में प्रतिष्ठित संस्थान में कार्यरत बनारस जनपद से डॉ. बी.डी. शर्मा) ने योग सिद्ध आश्रम पुरानी मंडी में बताया कि उनके मित्र एक बार अपने सद्गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के दरबार में पहुंचे। वहां पहुँचते ही महाराज जी के चरणों में गिरकर फफक–फफक कर रोने

लगे। महाराज जी ने उन्हें उठाकर प्रेमपूर्वक पूछा, ''लल्ला तुम बहुत उदास लग रहे हो क्या बात है? उत्तर देने के स्थान पर वह और जोर से रोने लगे। महाराज जी द्वारा बार–बार पूछने पर इतना ही कहा–

''महाराज जी, मेरे घर वाले मेरा विवाह करने पर जोर दे रहे हैं, जबकि मैं विवाह करना नहीं चाहता।''

''क्यों लल्ला, विवाह क्यों नहीं करना चाहते?'' महाराज जी ने पूछा।

''महाराज जी विवाह करके तो मैं संसार सागर में डूब ही जाऊँगा। आपके बताए योग मार्ग पर चल नहीं पाऊँगा।''

''सद्गुरुदेव महाराज प्रत्येक जीव के मन की बात जानते थे साथ ही यह भी उसके लिए क्या कल्याण कारक है। अतः अब उन्होंने तनिक विनोदपूर्वक अपने घुटने पर हाथ रखकर कहा, ''लल्ला क्या यहाँ तक डूबोगे'', फिर कमर तक हाथ रखकर कहा ''क्या यहाँ तक डूबोगे'' फिर गर्दन पर हाथ रखकर कहा ''अच्छा, यहां तक डूबोगे?'' अब अचानक धीर गम्भीर वाणी में कहा, ''लल्ला यदि तुम पूरे के पूरे भी डूब जाओगे, तब भी हम तुम्हें उबार लेंगे। चिन्ता मत करो। अपने माता–पिता की आज्ञा मानकर विवाह कर लो, आगे हम देख लेंगे।''

चिरंजीव सुबोध बताते है कि महाराज जी के आदेश का पालन करके उनके मित्र ने गृहस्थ धर्म अपनाया और आज सुखी जीवन व्यतीत करने के साथ–साथ योग मार्ग में भी अग्रसर हो रहे हैं।

ऐसी एक नहीं अनेकों घटनाएं हैं जिनके द्वारा परम कृपालु भक्तवत्सल अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक हमारे आपके सद्गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपनी सार्वभौमिक सत्ता का परिचय दिया है। हमारा दुर्भाग्य कि अपनी अल्पज्ञता के कारण हम उनको एवं उनकी महिमा को पूर्ण रूपेण नहीं जान सके। या हो सकता है उन्होंने स्वयं ही अपने आपको छुपा रखा था। कहां तो आज के दम्भी एवं पाखंडी साधु जिनके पास सिवा लोभ–लालच–स्वार्थ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं फिर भी अपने आपको योगेश्वर कहते हैं और अपनी बड़ाई का बखान करते फिरते हैं और कहां मेरे सद्गुरुदेव जिन्होंने हमेशा अपने आपको पूर्ण योग योगेश्वर होते हुए भी जग से छुपाए रखा। उन्हें कोई–कोई ही जान सका और जिसने जान लिया वह तो निहाल ही हो गया।

ऐसे मेरे सद्गुरुदेव जी !

'योग' शक्तिमान बनाने की विद्या है

—दिनेश चन्द्र शर्मा, मो. 9412671314

गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने प्रवचनों में 'दुर्लभो मानुषः जन्म' की चर्चा करते हुए मनुष्य जन्म की महत्ता की ओर ध्यान दिलाते हुए योग मार्ग पर चलने के लिए सदैव ही प्रेरित करते रहे हैं। योग ही दिव्य और अविनाशी जीवन है।

दार्शनिक रूप से देखें या वैज्ञानिक दृष्टि से, मानव जीवन को एक अमूल्य सम्पदा के रूप में ही स्वीकार किया जाता है। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक क्षेत्र में ऐसी अद्भुत क्षमताएँ भरी पड़ी हैं, यदि इन्हें विकसित करने की विद्या अपनाई जा सके और सदुपयोग की दृष्टि पाई जा सके तो जीवन में लौकिक और अलौकिक सम्पदाओं, विभूतियों के ढेर लग सकते हैं। मानवीय व्यक्तित्व ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है।

मनुष्य जन्म कर्म योनि है। इसमें कर्म किया जा सकता है। अन्य सब भोग योनियाँ हैं। उनमें अपने भविष्य निर्माण के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता। मनुष्य जन्म की दुलर्भता को समझकर अपने कल्याण के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए।

दुनिया भर में योग विद्या की महत्ता को स्वीकार किया जा रहा है और लोग अनुभव कर रहे हैं कि योग स्वस्थ जीवन, सकारात्मक सोच के साथ–साथ अति–इन्द्रिय क्षमताओं को विकसित करने में सहायक है। योग जीवन जीने की कला और विज्ञान। योग साधना से साधक आनन्द, ज्ञान, शान्ति, प्रेम, सुख, पवित्रता और शक्ति प्राप्त करता है।

योग–योगेश्वर, योगावतार प्रभु श्री राम लाल जी महाराज ने लुप्त योग विद्या का पुनरुद्धार किया और लोक कल्याण के लिए योग को सर्व सुलभ कराया। यह परम्परा निरन्तर प्रगति करते हुए विश्वभर में योगविद्या को प्रकाशित कर रही है।

योग शब्द शक्ति का पर्याय है। जो अपने जीवन को योग रूप बना लेता है, उसका जीवन दिव्य बन जाता है। तन, मन व बुद्धि की शुद्धि योग साधना से हुआ करती है। आत्म साक्षात्कार का प्रमुख साधन योग को ही माना गया है।

योग मात्र व्यायाम नहीं है। यौगिक ग्रन्थों के अनुसार योग विभिन्न प्रकार की

प्रक्रियाओं का सम्मिलन है, जिनके माध्यम से मनुष्य शरीर एवं मन के बीच सामंजस्य स्थापित कर आत्मा साक्षात्कार को प्राप्त करता है। योग शास्त्र के नियमों और उपायों पर ध्यान देने से मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और उसे शक्तिशाली बना सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति में महान बनने की सम्भावना बीज रूप में विद्यमान है। प्रशिक्षण और अभ्यास के द्वारा विकास किया जा सकता है। साधना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे ठीक ढंग से यदि सम्पन्न किया जाए तो कुरूप से कुरूप चीज भी सुन्दर बन सकती है। मनुष्य को जब जीवन सम्पदा मिल गई है तो उसके सही उपयोग के लिए जीवन साधना का भी महत्व समझा जाना आवश्यक है।

हमारी समस्याएँ और उनके समाधान, प्रगति, समृद्धि और उपलब्धियाँ दो पक्षों पर निर्भर करती हैं। एक है–'आन्तरिक' और दूसरा है–'बाह्य'। आन्तरिक पक्ष को गुण–कर्म–स्वभाव कहा जा सकता है और बाह्य पक्ष को लोक व्यवहार कहा जा सकता है। लोक–व्यवहार और लोक मर्यादा पर भगवान आदि शंकराचार्य जी के कथन–यद्यपि शुद्धम् लोक विरुद्धम् नाचरणियं न करणियं पर भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

गुण, कर्म, स्वभाव के परिष्कार को सुसंस्कृत व्यक्ति का आधार मान सकते हैं। यह दुनिया भव बन्धन भी है, माया भी है, नरक भी है, परन्तु ऐसा है उन्हीं के लिए जो अपने गुण, कर्म, स्वभाव को परिष्कृत नहीं कर सकते हैं। जीवन की दृष्टि से असफल, मानवता की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण, व्यक्तित्व की दृष्टि से फूहड़ता और आन्तरिक दृष्टि से अशान्ति से भरे हुए मनुष्यों के बाहुल्य के कारणों में जीवन जीने की कला से अनभिज्ञ होना और साधना की उपेक्षा करना भी है।

साधक को अपने व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू सजाने, संवारने और परिष्कृत करने चाहिए। मनुष्य स्थूल शरीर तक सीमित नहीं है। उसके 'स्थूल', 'सूक्ष्म' और 'कारण' शरीर का तथ्य सर्वविदित है। इसलिए साधक को अपने तीनों शरीरों की गतिविधियों, क्रियाओं, विचारणाओं एवं आकांक्षाओं का परिष्कार सतत् करते रहना चाहिए। स्थूल से सूक्ष्म की ओर भी योग ले जाता है।

जिन्हें हम महापुरुष या महामानव कहते हैं, वे किसी अन्य लोक से नहीं आए, वरन् साधना के द्वारा सुसंस्कृत विकसित महामानव ही वे व्यक्तित्व होते हैं। आन्तरिक दृष्टि से सुसंस्कृत, परिष्कृत गुण कर्म स्वभाव के व्यक्ति बाह्य दृष्टि से सामाजिक उत्तरदायित्वों को निष्पक्ष और मनोयोगपूर्ण निभाने वाले, अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों में प्रसन्न और

प्रफुल्लित करने की क्षमता अर्जित कर लेते हैं। उन्होंने विश्वास किया कि मनुष्य अपनी विचार शक्ति के कारण संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। नियमित योग अभ्यास के द्वारा इसी जीवन में महामानवों जैसी स्थिति प्राप्त की जा सकती है। समय को संवारें, सोच को संवारें–ऊँची बनायें, भावनाओं और व्यवहार को सुन्दर बनायें। सदा उमंग में रहें, प्रसन्नचित रहें। (Always be optimistic)। यह योग साधना से सहज सम्भव है।

आत्म–उत्कर्ष की साधना के लिए आत्म–चिन्तन, आत्म सुधार, आत्म निर्णय और आत्म विकास की समन्वित प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। इनको 'मनन', और 'चिन्तन' भी कह सकते हैं। मनन में आत्म समीक्षा और अवांछनीयताओं का शोधन आता है। चिन्तन में आत्म विकास और आत्म निर्माण की प्रक्रिया अपनानी पड़ती है।

मनोबल यदि दुर्बल होगा तो ही हारना होगा अन्यथा सत्साहस जुटा लेने पर सफलता मिलती है। 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत'। चंचल मन और अस्थिर बुद्धि से काम नहीं चलता है। किसी कार्य में निश्चितता और पूर्णतापूर्वक तभी लगा जा सकता है जबकि हमारा मानसिक सन्तुलन स्थिर और ठीक हो। यदि हम मानसिक दृष्टि से सशक्त और सन्तुलित हैं तो बाहरी दवाब और विवशता से निबटने का भी उपाय किया जा सकता है। मन की एकाग्रता योग की वर्णाक्षरी है। मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है–मन एव मनुष्याणाम् कारणं बन्धनं मोक्षयोः। गीता में योगीराज भगवान श्रीकृष्ण ने मन को एकाग्र करने के उपाय समझाए हैं।

योग विद्या सर्वशक्तिमान बनाने वाली विद्या है। योग व्यायाम मात्र नहीं है। योग के सभी अंगों, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा समाधि की साधना के लिए धैर्यपूर्वक नियमित और निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। इस कहावत का भी ध्यान रखें कि "देखा देखी कीजैं योग, छींजे काया बाढ़े रोग।" अतः अपने गुरुदेव या अनुभवी योग शिक्षक के निर्देश में योग अभ्यास करने पर बल दिया जाता है। यम, नियम द्वारा लोगों के जीने का ढंग बदलेगा और फलस्वरूप सुन्दर समाज बनेगा। यम–नियम, आसन, प्राणायाम वहिरंग अभ्यास है। प्रत्याहार सेतु है। धारणा, ध्यान, समाधि अंतरंग साधना है। इसी क्रम से योग मार्ग पर चलना चाहिए।

योगावतार प्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने 'जीवन तत्व साधन' के रूप में अमूल्य निधि दी है। जीवन तत्व साधन, गुरु मन्त्र के जाप और नियमित और नियत समय पर गुरुदेव द्वारा बताई विधि से ध्यान करना चाहिए। आनन्द कन्द कृपा निधि गुरुदेव की कृपा अवश्य प्राप्त होगी।

श्री आचार्य दासलाल जी महाराज के आगामी

योग प्रचार कार्यक्रम

1. 16 नवम्बर से 18 नवम्बर तक

   पता—श्री विद्यार्थी वाटिका श्री ठक्कर बापा इन्टर कॉलेज
   कालपी—जि. जालौन

2. 21 नवम्बर से 23 नवम्बर

   श्री प्रभु रामलाल योगाश्रम जी.टी. रोड
   घरौण्डा (P.W.D. रेस्ट हाऊस के सामने)
   करनाल (हरियाणा)

3. 27 नवम्बर से 30 नवम्बर तक नागपुर

   पता—सतीश दीक्षित C/o स्वामी गोकुलानन्द
   सन्यास आश्रम पुलिस ग्राउण्ड के पास
   काटोल रोड—नागपुर सी.पी. डब्ल्यू. डी. के पीछे
   सम्पर्क—9823666950, 9423078112

4. 4 दिसम्बर से 6 दिसम्बर तक

   दतिया C/o श्री चन्दन सिंह बाबू की कोठी,
   बस स्टैण्ड के सामने, दतिया (म. प्र.)
   फोन—9425773512

5. 7 व 8 दिसम्बर को ग्वालियर C/o प्रदीप त्रिवेदी

   लक्ष्मी परिसर—गोला मन्दिर के पास
   धर्मवीर पेट्रोल पम्प के सामने,
   ग्वालियर (भिण्ड रोड) म.प्र.

एक प्रसिद्ध महात्मा के उद्‌गार

लोग मेरी पूजा करने को बहुत उत्सुक रहते हैं ; पर जब मैं उनसे उसकी पूजा करने को कहता हूँ, जिसकी पूजा मैं भी करता हूँ, तो वे मेरी बातों की उपेक्षा करते हैं। मुझे यह देखकर खेद होता है कि वे किसी सच्चे महात्मा को प्राप्त करने के अधिकारी नहीं। धूर्तों द्वारा वे ठगे जा सकते हैं, किंतु किसी भी सदाशय के हितकारी वचन उनके हृदय तक नहीं पहुँचते।

स्वार्थ ने संसार को अन्धा कर दिया है। लोग मुझे शरीर से निरपेक्ष और समदर्शी कहते हैं। आश्चर्य तो यह है कि मुख से ऐसा कहते समय भी वे मेरे द्वारा अपना कुछ लाभ होने की इसलिए आशा रखते हैं ; क्योंकि वे मेरे निकट सम्पर्क में रहते और मेरी शारीरिक सेवाओं में तत्परता से लगे रहते हैं।

मैं स्पष्ट देखता हूँ कि लोग मुझे झूठा और महात्मा एक साथ समझते हैं। जब मैं उनसे कहता हूँ, मुझमें कोई सिद्धि नहीं, मेरी चरणधूलि लेने या पूजा करने से कोई लाभ नहीं, मैं भी तुम्हारी भाँति साधारण पुरुष हूँ, तो वे इन शब्दों को हँसी में उड़ा जाते हैं। इन पर वे विश्वास नहीं करते। इसके विरुद्ध मुझसे ऐसी आशा रखते हैं, जिसे मैंने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया है।

श्रद्धालु कहे जाने वालों की भीड़ चाहती है कि मैं दिन–रात उनके सामने बोला करूँ, उनके ऊटपटांग पदार्थ खाता रहूँ, इतने पर भी स्वस्थ रहूँ। वे साधन करने का अवकाश नहीं देना चाहते ! परन्तु साधननिष्ठ से होने वाले लाभ को चाहते हैं। अच्छे भोजन, अच्छे वस्त्र में रखकर वे मुझे त्यागी कहते हैं। मैं सोचता हूँ कि वे मेरा उपहास कर रहे हैं।

स्त्रियों ने तो और भी ऊधम मचा रखा है। वे चाहती हैं कि एकान्त में मैं उनकी पूजा ग्रहण करूँ, उन्हें उपदेश दूँ। उनके अभिभावक भी यही चाहते हैं। साथ ही सब चाहते हैं कि मैं निर्विकार रहूँ। एक कलियुग के प्राणी से वह आशा की जाती है जो पराशर, विश्वामित्र, श्रृंगीऋषि प्रभृति के लिए भी विफल रही है।

जब तक ऐसी परिस्थिति है, धूर्तों से समाज को नहीं बचाया जा सकता। घृणित काण्डों का होना बन्द नहीं होगा। साधक एवं महात्माओं को भगवान् ही बचायें तो बचें। प्रभु समाज को सुबुद्धि दें। वह अपने एवं साधकों के पतन के इस मार्ग से बचे।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20

NOVEMBER 2018

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________

____

____

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो दानं भार: क्रिया विना।
(हितोपदेश)

जिनके वश में चित्त और इन्द्रिय नहीं हैं उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किये ज्ञान बोझ के समान है जैसे कुरूप स्त्री के पास आभूषण।